अखण्ड आनन्द

मार्च 2005

मार्च 2005
वर्ष 21 अंक 12

सम्पादक : विश्वम्भरनाथ द्विवेदी

अनुक्रम

प्रकाशक :
स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वती सेवा-संस्थान

कार्यालय :
आनन्द कानन
सीके. 36/20, दुण्ढिराज
वाराणसी-221001
फोन : (0542) 2392337

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	:	50.00
आजीवन	:	1100.00
संरक्षक	:	2500.00
प्रति	:	5.00

शाखा कार्यालय :
अखण्डानन्द पुस्तकालय
आनन्द कुटीर
मोतीझील, वृन्दावन (मथुरा)
फोन : (0565) 2540481

विक्रय शाखा : सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, 28/16 बी. जी. खेरमार्ग, मालाबार हिल, मुम्बई-6 ● फोन : (022) 23682055

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्।
न बिभेति कुतश्चन॥

मार्च ※ वर्ष 21 (2004-05) अङ्क 12 (पूर्णाङ्क 255) ※ 2005

ब्रह्मा

मूर्त्तिः स्मृर्तृतमोहरा सहचरी वाचां परा देवता
व्याहाराः श्रुतयः कुटुम्बकमिदं विश्वञ्चरस्थावरम्।
यस्यैतच्छ्रुतिमूलमूलकतया सन्दर्शितप्रक्रियं
स्वारम्भम्भगवन्तमन्तरहितम्ब्रह्माणमीडामहे ॥7॥

अँधेर दूर कर तमगुन नासी। वाचा मनोहरि नित संग सुहाती॥
चउ मुख ते जिन वेद उवाची। चर-अचर परिकर रहवासी॥
उर ते प्रकटेउ जे नित-नूतन। विरंचि के सबही हैं जूठन॥
वेद परीछा किन्ह सब करमा। विधि अनन्त कस जाई बरना॥

भावानुवाद—श्रीसोमदत्त द्विवेदी

आनन्द-निधि

तत्त्वज्ञान कैसे हो?

धातु, संकल्प और कर्मके अनुसार सारी सृष्टि बनी है। जीवका मैं-पना हटने पर उसे परमात्माकी प्राप्ति होती है।

जैसी सुषुप्ति है, वैसा ही प्रलय है। उस समय भी संस्कार मौजूद रहते हैं। सृष्टि होने पर, जागने पर संस्कार जाग्रत होते हैं। समष्टि अन्त:करणमें-समष्टि चैतन्यमें संस्कार बने रहते हैं। इसी कारण प्रपंचके मिथ्यात्वकी मान्यतासे छुट्टी माने मुक्ति नहीं मिलती, ब्रह्मात्मैक्य-ज्ञानसे मुक्ति मिलती है।

ब्रह्माजी केवल सत्यका ही चिन्तन करते हैं। ऋतम्भरा-योगकी स्थितिमें बुद्धि सत्यको ही ग्रहण करती है। समष्टिके अन्त:करणका अभिमानी ब्रह्मा है। वे सृष्टिकी उत्पत्तिके लिए वर्ण, आश्रम और साधनका विभाजन करते हैं। सन्मार्ग पर चलनेवाले माने विशुद्ध आचरण करनेवाले लोग पहले ब्रह्माजीकी सत्प्रेरणासे इसी परम्पराकी रक्षा करते थे। तब उनके शुद्ध मनमें भगवान् स्थित थे। वे सब अपने-अपने धर्मका पालन करनेमें आनन्द मानते थे और परमात्माका दर्शन करते थे।

कालका प्रभाव आया, लोगोंकी शक्ति क्षीण हुई, अधर्मका जीव अंकुरित हुआ, राग-द्वेष बढ़ गये, मामवताकी हत्या हुई। तब सहज-सिद्धि और रसका उल्लास लुप्त हो गये।

श्रीउड़ियाबाबाजी कहते थे—'वैराग्य टिकाऊ तब होता है जब भीतर रस हो।' आनन्द न होने पर भीतर शैतान जागता है। लोगोंको सारे सुख-साधन मिले, निवास, व्यापार, संग्रह, शिल्प, अनाज; फिर भी वे सन्तुष्ट न हुए। कालकी गति आगे बढ़ी, पापकी बूँद समुद्र बन गयी। वेदकी निन्दा होने लगी, अशुद्ध अन्त:करणवाले दुराचारी हो गये, बेईमानी बढ़ गयी। तब ब्रह्माजीने आवश्यकताके अनुसार मर्यादाकी स्थापना की। वर्ण-धर्मके अनुसार लोक-मर्यादा बनी। उन्होंने कर्म और फलकी व्यवस्था की।

—महाराजश्री

(सं०—नारायणी)

ब्रह्ममूर्ति श्रीउड़िया बाबा जन्म शताब्दी महोत्सव

स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

संकलनकर्त्री : श्रीमती सतीशबाला महेन्द्रलाल जेठी

(पूर्वानुवृत्त, फरवरी 2005)

अब यह जो भक्ति है यह मिले कहाँसे? तो इसके सम्बन्धमें यह निर्णय है कि भक्तोंके संगसे ही भक्ति मिलती है। जिनके हृदयमें भक्ति होवे उन भक्तोंका संग; यह एकान्तमें नहीं मिलती है। एकान्तमें योगकी समाधि हो सकती है; आप आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार कर लो और एकान्तमें जाकर बैठो और अपने मनको ऐसा धक्का दो, उल्टा धक्का कि प्रतिलोम परिणामको सहज भावसे प्राप्त होकर जाकर समाधिमें प्राप्त हो जाय। अनुलोम परिणामसे समाधि भी नहीं होगी, प्रतिलोमसे ही होगी और एक बार उसके लिए पहली चोट जरूरी होगी कि हमारा मन शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और सांसारिक सुख-दुःख इनसे विमुख होकरके अपने स्वरूपमें स्थित होनेके लिए लौट पड़े। लौट पड़नेपर फिर समाधि की कक्षामें जाने पर कर्तृत्व पूर्वक प्रयासकी कोई जरूरत नहीं रहेगी। सहज भावसे वह अर्न्तमुख होकर समाधिस्थ हो जायेगा। विवेक ख्याति हो गयी तो असम्प्रज्ञात और विवेक ख्याति यदि नहीं हुई तो सम्प्रज्ञात, परन्तु समाधि लग जायेगी। एकान्तमें आपको समाधि मिल सकती है। परन्तु तत्त्वज्ञान तो एकान्तमें नहीं मिल सकता, क्योंकि वृत्तिकी जड़ता यदि अभीष्ट होवे, शान्ति अभीष्ट होय; तो शान्ति विक्षेपको तो निवृत्त कर सकती है; परन्तु शान्ति अज्ञानको निवृत्त नहीं कर सकती। शान्ति और समाधि दोनोंमें अज्ञानको निवृत्त करनेका सामर्थ्य नहीं है।

इसलिए उसके लिए तत्त्वज्ञानियोंकी कम्पनी नहीं चाहिए। एक हजार तत्त्वज्ञानी नहीं चाहिए और जैसे सत्संगियोंकी भीड़ चाहिए वैसे जिज्ञासुओंकी भीड़में भी रहनेकी जरूरत नहीं है। एक चाहिए जिज्ञासु और उसके लिए एक चाहिए तत्वज्ञानी गुरु; और वह व्यक्तिगत रूपसे अपनी सब जिज्ञासाओं पर समाधान अपने सद्गुरुसे कर सकता है।

यदि महाराज कोई ऐसा होवे अभागा कि वह कहे हम तो दुनियामें किसीको तत्त्वज्ञानी मानते ही नहीं हैं तो हम किस पर श्रद्धा करें? तो बोले—तब तुम अपने तत्त्वज्ञानी होने पर श्रद्धा कैसे करते हो? जब दुनियामें कोई तत्त्वज्ञानी नहीं है तो तुम कहाँसे तत्त्वज्ञानी हो जाओगे? तुम क्या सातवें आसमानसे टपकके आये हो? कोई नहीं है तो तुम कहाँसे हो जाओगे? कहो कि कोई निर्दोष नहीं है तो तुम निर्दोष कहाँसे होओगे, कहो कि कोई महात्मा नहीं है तो तुम महात्मा कैसे बनोगे? तब तो तुम ज्ञानके, महात्मापनके, निर्दोषताकि मार्गसे भ्रष्ट हो गये। इसीलिए हम कहते हैं कि वह आदमी बदकिस्मत है।

अब रही बात भक्तिकी, तो योग तो एकान्तमें हो सकता है और तत्त्वज्ञानके लिए एक जिज्ञासु अपनी समस्याओंका समाधान, प्रश्नोंका उत्तर, जिज्ञासाओंका उत्तर; अज्ञानकी निवृत्तिके लिए सचमुच—

तद्विज्ञानार्थं सद्गुरु।

परन्तु, भक्ति जो है वह गुरुके आश्रित हो जाय तो महाराज भक्तिका वातावरण चलता है। उसमें तो, भागवतमें इसका बहुत बढ़िया वर्णन है—

नैकात्मतां मे स्पृहयन्ति केचिन्मत्पादसेवाभिरता मदीहाः।
येऽन्योन्यतो भागवताः प्रसज्य सभाजयन्ते मम पौरुषाणि॥
पश्यन्ति ते मे रुचिराण्यम्ब सन्तः प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि।
रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि साकं वाचं स्पृहणीयां वदन्ति॥

(३.२५.३४-३५)

बोले—'नैकात्मतां मे स्पृहयन्ति' कि 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा बैठना हमको बिलकुल पसन्द नहीं है। अरे!

ब्रह्मज्ञान हो गया तो भी मैं ब्रह्म हूँ करके बैठना आवश्यक नहीं है, और नहीं हुआ तो जिज्ञासु होकर सद्गुरुकी शरणमें रहना चाहिए उसमें भी मैं ब्रह्म हूँ बनके बैठनेकी जरूरत नहीं है, दोनों ही हानि।

तब क्या करते हैं कि 'नैकात्मतां मे स्पृहयन्ति' एकात्मताकी प्रशंसा भी नहीं करते हैं, स्पृहा भी नहीं करते। एक दिन ऐसा आ जायगा जब हम परमात्मासे एक हो जायेंगे। क्या करना चाहते हो परमात्मासे एक होकर? प्रश्न यह है कि क्या करना चाहते हो? अब आपकी बात मैं अपने मुँहसे बोलना नहीं चाहता हूँ, परमेश्वरसे एक होकर तुम क्या करना चाहते हो आखिर? बोले—जैसे लक्ष्मीनारायण रहते हैं वैसे रहेंगे, जैसे राधाकृष्ण रहते हैं वैसे रहेंगे, जैसे सीताराम रहते हैं वैसे रहेंगे? क्या करोगे परमात्मासे एक होकर। तो भक्ति सिद्धान्तमें परमेश्वरकी एकताकी स्पृहा नहीं की जाती। वह तो भावमय, रसमय, वहाँकी दुनिया तो दूसरी है। तो बोले एक बात तो यह है कि भगवान्के चरणारविन्दकी सेवा करो, धीरे-धीरे महाराज पाणि-स्पर्शाक्षमाभ्यां इतने सुकुमार चरणारविन्द हैं कि वे हाथके कठोर स्पर्शको बरदाश्त नहीं कर सकते। वहाँ तो सम्भोगकी कल्पना ही जो है ना, वह हिंसापूर्ण है। ऐसा रस है कि वह स्वयं उल्लसित होता रहता है, स्वयं तरंगायमान होता रहता है। कर्तृत्व-पूर्वक, कर्मपूर्वक और कृत्रिम भाव पूर्वक वहाँ रसकी उत्पत्तिकी कोई आवश्यकता नहीं होती है। वह तो रस-ही-रस है। बोले क्या करोगे? बोले—'मत्पादसेवाभिरता'। देखो; इसमें भी भगवान्के चरणारविन्द, उसमें भी मत्पादका अर्थ है 'आवयो पादयो मत्पादयो' हम दोनोंके चरणारविन्द, दोनोंके दो चरणारविन्द नहीं, एक चरणारविन्द। उसकी सेवा। बोले उसकी सेवा भी नहीं। मत्पाद भी नहीं, उनकी सेवा भी नहीं, परन्तु चाहिए मत्पादसेवाभिरति, अभिरति अपने हृदयकी वस्तु है। अभिरति हार्द्र वृत्ति है और मत्पाद भगवान्का है, उनके चरणारविन्द हैं और उनकी सेवा है; परन्तु हमारी उसमें रति है अभिरति, 'सीताराम चरन रति मोरे' हमको न सीता चाहिए न राम चाहिए न चरण चाहिए, रति चाहिए हमको तो, रतिसे रसानुभूति होती है। रसका उदय रतिसे होता है। रति स्थायी भाव है और रस उसका परिपाक है। तो हमको तो चाहिए रति पूर्वक रस, इसीको कहते हैं—'भक्तया संजायतया' अब देखो यह मत्पाद सेवाभिरता'। बोले—अरे भाई! दिन-रात उसमें रुचि नहीं होती है। बोले कि जितना काम करें वह सब उसीके लिए है। मदीहाः। हम एक रोटी बनाते हैं तो रोटी बनावे हैं तो भगवान्की याद नहीं आती तो प्रश्न है किसके लिए बनाते हैं? अपने खानेके लिए, तब तो अपनी याद आवेगी रोटी बनानेमें, भगवान्की याद काहेको आवेगी, काहेके लिए बनाते हो? पति पुत्रादिके लिए बनाते हैं तो पति पुत्रादिकी याद आवेगी।

तो मदीयाका अर्थ है कि जितनी चेष्टा अपने शरीरसे हो—चलना, हाथका हिलना, भौंहका मटकना, आँखका देखना सब उसीके लिए हो मदीया, अच्छा अब? बोले बैठ जाओ, चार दीवाने मिलके बैठ गये बोले भक्तिकी प्राप्ति यहाँ है।

'अन्योन्यतो भागवताः प्रसज्य'—प्रसज्य है ये। भागवतकी एक और लीला है, कोई श्लोक पढ़ने लगे, अभी कल-परसों हमको शास्त्रीजीने बताया कि पण्डित लोग श्लोक पढ़ रहे थे; तो हमको तो पहले आपने बताया था कि ऐसे पढ़ना चाहिए; तो मैं तो ऐसे पढ़ता हूँ और पण्डित लोग पढ़ रहे थे, तो उन्होंने तीन-चार बार कोशिश की कि इस श्लोकको हम ठीक-ठीक पढ़ लें और उनसे पढ़ा नहीं गया। 'यस्वानुभाव-मखिलश्रुतिसारमेकं अध्याम दीपमति तितीर्वताम्' तितिर्षाताम् तो है अलग तो हमको तो गुरु जी ने पहले ही बता दिया था कि बेटा इसके अतितितीर्षताम् मत पढ़ना।

रेफको अगर पूरा-पूरा पढ़ोगे तब तो पढ़ना आ गया

और रेफको अगर पूरा नहीं पढ़ोगे तो श्लोक अशुद्ध हो जायेगा। अब यह गुरुजीकी बतायी हुई बात है। अब हमारे पण्डित अपने आप ही भागवत बाँच लेते हैं तो उनको आता ही नहीं तो पढ़ना भी सीखना-सिखाना पड़ता है।

तो यह जो भक्ति की जाती है, यह आपको सच बतावें यह सेवा-वेवा करना लोगोंको बिलकुल नहीं आता। यह तो होते हैं प्राय: मतलबी यार; अब जो लोग रास्ता चलते हुए पाँव छूते हैं वह यह तो चाहते हैं कि पाँव छूनेका पुण्य हमको हो जाय, लेकिन इनको नाखून लगनेका हमको कोई पाप भी होगा इसका तो उनको बिलकुल कोई ख्याल नहीं होता है। अच्छा पाँव दबाने लगते हैं तो पाँवकी हम सेवा कर रहे हैं यह तो उनको ख्याल होता है; पर बाल टूटनेका उनको अपराध भी लगेगा यह उनको ख्याल कहाँ होता है? अच्छा पाँव दबाना है तो कितने जोरसे इनको अनुकूल पड़ेगा, यह तो उनको मालूम नहीं है तो यह जो सेवा है वह भी कोई साधारण सेवा नहीं होती है। भात बनाते हैं पर, कितना गला हुआ पसन्द है? कितना कड़ा पसन्द है? दालमें कितना नमक पसन्द है? मालूम तो है नहीं, सेवा करनेके लिए टूट पड़े, खीरमें ज्यादा शक्कर ही डाल दिया; ऐसा गरमा-गरम भोग लगाया कि मुँह ही जल गया।

सेवा करना भी अकेले नहीं आता है। उसको भी चार सेवा करने वालोंके साथ मिलकर जब सीखते हैं तब वह आता है। और सेवा अपने मनकी नहीं होती, स्वामीकी अनुकूलतामें सेवा होती है। अपने मनकी अनुकूलतामें तो सेवा होती नहीं। अच्छा और किसीको यह मालूम पड़े कि हमने बड़ी भारी सेवा कर दी, तो उसने सेवा करके एक पाप कमाया उसको सोचना चाहिए कि कितनी सेवाकी संसारमें आवश्यकता है और जहाँ एक करोड़, एक अरब गिलाससे भी संसारकी प्यास नहीं बुझ सकती वहाँ हमारी यह जो एक गिलास पानी की सेवा है. उसकी क्या कीमत है यह कितनी छोटी है? उसमें अभिमान करनेका तो कोई कारण ही नहीं है।

तो जब चार प्रेमी, चार भक्त मिलते हैं; तब वह परस्पर एक दूसरेकी सेवाका विचार करते हैं कि हमारे स्वामीकी सेवा कैसे होती है, उनको सुख कैसे पहुँचता है, सोनेमें सुख है, कि खानेमें सुख है, कि विश्राममें सुख है, कि काममें सुख है। बिलकुल सेवामें जो जड़ता आ जाती है वह न आवें; कि ठाकुर जी क्या करते हैं कि हर समय बाँसुरी अपने अधरों पर धारण करके दोनों हाथ ऐसे रखते हैं और बाँसुरी फूँकते रहते हैं। और आप क्या सोचते हैं भगवान्‌का यही रूप है वह कभी अपना हाथ यहाँसे नीचे नहीं करते हैं? क्या कभी बाँसुरी मुँहसे नीचे नहीं हटाते हैं? क्या कभी मुकुट उतारके शयन नहीं करते हैं? और घड़ीके इतने पराधीन हैं कि जब हम अष्टयाम करेंगे तो इतने कालसे इतने काल तक यही सेवा होनी चाहिए? भगवान्‌में किसी तरहका स्वातन्त्र्य नहीं है? बिलकुल पराधीन हो गये हैं? तो इसका अर्थ यह है कि भागवत पुरुषोंको अपने भावकी परीक्षा करनेके लिए; भागवत माने भगवान्‌के भक्त, भगवान्‌के प्रेमी, तो प्रेमी लोग जब मिलके आपसमें चर्चा करते हैं तो उस चर्चासे यह बात निकलती है कि भगवान्‌का स्वभाव ऐसा, भगवान्‌का रूप ऐसा भगवान्‌का गुण ऐसा—

'अन्योन्यतो भागवता प्रसज्य' इसीलिए 'परस्परानुकथनं पावनं भगवद् यश:' परस्पर भगवान्‌के यशका अनुकथन करना। और 'स्मारयन्ति च' खुद स्मरण करते हैं और स्मरण कराते हैं।

देखो श्रीकृष्ण जब चले जाते हैं वनमें गो-चारणके लिए तब गोपी क्या करती हैं? वेणुगीत चलता है, जब चले जाते हैं तब युगलगीत होता है। जब उद्धवजी आते हैं तब भ्रमरगीत होता है। जब विरह होता है तब गोपी गीत होता है। तो इस तरह जो भक्त होते हैं वो 'अन्योन्य तो भागवता: प्रसज्य' प्रसज्य माने परस्पर प्रेम प्रसंजन और प्रसंजनसे ही प्रसंग शब्द बनता है। प्रसज्यते माने जो गुरुसे

आसक्त हो गया जो अपना शृंगार करके परमेश्वरसे मिलने योग्य अपने आपको बनाता है। उसका नाम सज्जन है। सज्जन कौन हैं? जो यह आँखके काजल और बालका नहीं, अपने दिलका ऐसा शृंगार करता है कि इसमें भगवान्‌को लीला करना है, उसका नाम सज्जन है।

तो, अन्योन्यतो भागवत: प्रसज्य दूर-दूरसे इकट्ठे हो जाते हैं अन्योन्यतो; और यह नहीं कि एकके ही घरमें सब जाँय, वह उनके घरमें जाते हैं, वह उनके घरमें जाते हैं, वह उनके पास जाते हैं वह उनके पास जाते हैं और प्रसंग जो है सभाजयन्ते मम पौरुषणि भगवान्‌के जो पुरुष चरित्र हैं, पौरुषयुक्त चरित्र हैं जिसमें उनका बल पराक्रम सब प्रकट होता है। उनका प्रेम, प्रेममें भी बल होता है।

अभी एक हमारे भक्त हैं, स्त्री भक्त हैं उन्होंने एक चित्र बनाया है। चित्र अभिसारका बनाया है एक गोपी समझो भगवान् श्रीकृष्णसे मिलनेके लिए जा रही है, रात्रिका समय है। उसकी पोशाक, उसकी चाल और उसके पाँवके नीचे साँप और बढ़िया जंगल उसमें चित्रित किया है। तो उसे भारतका सबसे बड़ा पुरस्कार जो है ललितकलाका, चित्रकलाका सबसे बड़ा पुरस्कार उसको इस बातपर मिला है, तो 'सभाजयन्ते मम पौरुषाणि' यह प्रेमका बल है।

स्वयं भगवान् भी अपने प्रेमीसे मिलनेके लिए, आतुर रहते हैं इसमें बड़ी अद्भुत लीला है। भगवान् एक है पर जब रसको प्रकट करना होता है, तब दो होकर प्रकट हो जाता है और जब दोनोंको स्वयंमें ही रस लेना होता है तो एक हो जाते हैं। उस समय भगवान्‌के परिकरके जो लोग हैं, सखी हैं, वह युगल सरकार नित्य निकुंजमें जब रसानुभूति रसोल्लासमें मग्न हैं तो बाहर बैठके क्या करते हैं? उनकी चर्चा ही तो करते हैं!

तो, भक्तिमें भगवद् विषयक चर्चा होनी चाहिए। एकको वक्ता बनाकर तुम सुनो, स्वयं वक्ता बनकर दूसरेको सुनाओ। अपने मनमें गुनगुनाते रहो। यह भक्ति जो है यह भक्तोंके संगसे बढ़ती है, यह इसकी महिमा है और धर्मानुष्ठान जो है वह शाश्वत धर्म, शाश्वत वचनकी प्रामाणिकतासे बढ़ता है। जितनी वेदमें श्रद्धा होगी उतनी जीवनमें श्रद्धा होगी, अगर वेदकी श्रद्धा उठ जायगी और यह सत्य-अहिंसाकी लोग जुबानसे तो तारीफ करते रहे तो क्या वे रहेंगे? सत्य-अहिंसाको भी जीवनमें आनेके लिए वाहन चाहिए। तो यदि क्रियात्मक धर्म नहीं रहेगा तो यह सत्य-अहिंसा आदि जो हैं यह वाहन शून्य होनेके कारण जीवनमें नहीं रहेंगे और भक्तिमें चाहिए भक्तोंकी सोसायटी, भक्तोंकी कम्पनी, योगमें चाहिए एकान्त और तत्त्वज्ञानके लिए चाहिए सद्गुण और एक बार महाराज जब तीव्र जिज्ञासाका उदय हुआ और सद्गुरु मिल गया, प्रत्यक्ष सद्गुरु इसको वक्तगुरु बोलते हैं। प्रत्यक्ष सद्गुरु यदि मिल गया तो वह तत्काल ज्ञान करा देगा और नहीं तो जिस गुरुके बारेमें आपका यह विश्वास है कि यह सचमुच ब्रह्मनिष्ठ तत्त्वनिष्ठ सद्गुरु थे तो वे उपदेश क्या करते थे? उनके वचनोंके द्वारा, क्योंकि उनके वचन भी वैदिक वचन ही थे, वेदानुसारी वचन ही थे। इसलिए उनके उपदेशोंके स्मरणसे और उनके उपदेशोंके उदयसे कालान्तरमें तत्त्वज्ञान हो सकता है और परोक्ष आचार्योंके प्रति भक्ति होनेसे भी कालान्तरमें भक्तिका उदय हो सकता है।

पर वह मार्ग लम्बा है और यदि जीवनकालमें ही कोई सच्चा भक्त, सच्चा ज्ञानी मिल जाय तो वह तत्काल ही जैसे एक दीयेसे दूसरा दीया संजो देते हैं, इस तरहसे तो हमारे हृदयमें प्रेमका दीपक प्रज्ज्वलित हो जाय और तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जाय।

असलमें भक्ति मार्ग जो है वह भावकी प्रधानतासे विचारकी प्रधानतासे ज्ञानका मार्ग, सृष्टिकी प्रधानतासे यह भौतिक विज्ञान, दृष्टिकी प्रधानतासे यह तत्त्वविज्ञान और आनन्द-रसकी प्रधानतासे भक्तिका विज्ञान। यह बिलकुल मनोवैज्ञानिक तथ्य हैं और यदि हम ठीक-ठीक इनके रासते पर चलें तो फिर यह मनोवैज्ञानिक नहीं रहेंगे, ये तात्त्विक, पारमार्थिक और सत्य वस्तुके अनुभवके रूपमें प्रकट होंगे। *(सावशेष)*

रामायणका काव्यमर्म

श्रीविद्यानिवास मिश्र

(पूर्वानुवृत्त, फरवरी 2005)

इस शृंखलामें युद्धकांड पर आधारित चार चित्र हैं। एक चित्र अंगदके पाँव उठाने की घटना पर आधारित है। इसका विशद् विवरण वाल्मीकि रामायणमें नहीं मिलता है। वाल्मीकि रामायणमें यह उल्लेख है कि अंगदके पाँव पटकनेसे रावणके किलेकी दीवारें टूट जाती हैं; जबकि इस चित्रमें एक राक्षस अंगदके पाँवको उठाते हुए दर्शाया गया है। युद्धकांडके इकहत्तरवें सर्ग पर आधारित चित्रमें अतिकायके साथ लक्ष्मणके युद्धको दर्शाया गया है। इस राक्षसकी देह अत्यन्त बलशाली चित्रित की गयी है। अतिकायके साथ वानर भी युद्धरत हैं। लक्ष्मण अतिकाय पर बाणोंकी वर्षा कर रहे हैं। अतिकायकी कायाके समक्ष लक्ष्मण व वानर अत्यन्त बौने दीख पड़ते हैं।

युद्धकांडके एक सौ सातवें सर्ग पर आधारित राम-रावण युद्ध दर्शाया गया है। इसमें राम व लक्ष्मण रावण पर बाणोंकी वर्षा कर रहे हैं। एक बाण ऐसा है जो रावणकी छातीको भेद रहा है। राम और रावणके रथ बड़ी सुन्दरताके साथ चित्रित किये गये हैं। रामके रथके घोड़े अत्यन्त उद्विग्न हैं। वे दोनों पाँव उठाकर खड़े हैं। रावणके रथमें गधे जुते हुए हैं। चित्रके ऊपरी भागमें कौए व गिद्ध दर्शाये गये हैं, जो युद्धमें मारे गये योद्धाओंके सिर व हाथोंको खाते हुए दिखायी दे रहे हैं। रावणके रथके पहियोंके लिए चाकलेटी रंगका उपयोग किया गया है। यह रंग मिट्टीका रंग है तथा यह चित्रकी प्रमुख विशेषता है। इसी शृंखलामें युद्धकांडके एक सौ सत्रहवें सर्ग पर आधारित एक सुन्दर चित्र चित्रकारने चित्रित किया है, जिसमें राम लक्ष्मण व सीता एक वृक्षके नीचे बैठे हैं तथा सुग्रीव व हनुमान उनके पीछे खड़े हैं। अन्य वानर और जामवंत धरती पर बैठे हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु व महेश भगवान् राम की प्रार्थना कर रहे हैं। इस चित्रमें शिवका चित्रण विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने केवल अपनी देह पर लँगोटी धारण कर रखी है। उनका मुख व पूरी देहयष्टि बुंदेलखंडी है। इसी प्रकार विष्णु व ब्रह्माको भी पारम्परिक बुंदेलखंडी परिधानोंमें दर्शाया गया है। विष्णुकी मूँछें भी पारम्परिक रूपसे चित्रित की गयी हैं। युद्धकांडके ही एक सौ बीसवें सर्गपर आधारित जो कि इस कांडका अन्तिम सर्ग है, राम दरबारका दृश्य चित्रित किया गया है। राम दरबार चित्रकारोंके लिए प्रमुख आकर्षणका विषय रहा है। इस विषयको उन्होंने पूरे भक्तिभावसे चित्रित किया है तथा प्राय: प्रत्येक राजस्थानी, पहाड़ी व मालवा शैलियोंमें राम दरबारको पूरे भक्तिभावसे चितेरोंने उरेहा है। मुझे झालावाड़ (कोटा) से राम दरबारका एक सुन्दर चित्र उन्नीसवीं सदीके उत्तरार्द्धका प्राप्त हुआ है, जिसमें राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, सीता व हनुमानको सुन्दर मुद्राओंमें दर्शाया गया है। इस चित्रमें नैसर्गिक शोभा पूरे उत्कर्षके साथ विद्यमान है। बुंदेलखंडी रामायणका यह राम दरबारका चित्र भी बुंदेलखंडी परिवेशमें चित्रित है। इस चित्रकी यह विशेषता है कि इसमें उपवन नहीं, उद्यान चित्रित किया गया है। राम अब अयोध्या लौट आये हैं। वे अब अयोध्याके राजा हैं, इसलिए सजे-सँवरे उद्यानमें विराजमान हैं। इस चित्रमें हरी दूबका चित्रण विशेष रूपसे उल्लेखनीय है।

अन्तिम चित्र उत्तरकांडके नौवें सर्गका इस शृंखलामें है। यह रावण-जन्मकी कथा पर आधारित है। इस चित्रमें रावणको बैठे हुए दर्शाया गया है।

छत्तीस लघुचित्रोंकी इस शृंखलाकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नानुसार हैं—

1. सभी लघुचित्र एक जैसे आकारके हैं। उनका आकार 30.7×20.5 से.मी है।

2. सभी चित्र स्थानीय रंगोंसे बनाये गये हैं।

3. हलके नीले रंगका प्रयोग पृष्ठभूमिके रूपमें किया गया है; जबकि पीले, हरे, हलके हरे, सफ़ेद, लाल व गहरे नीले रंगोंका प्रयोग बहुतायत से किया गया है। बैंगनी, हलके लाल रंग अपवाद रूपमें उपयोगमें लाये गये हैं।

4. चित्रोंके आसपासकी बाउंड्री लाल रंगसे बनायी गयी है; किन्तु कुछ चित्रोंमें दो या तीन रंगोंका प्रयोग किया गया है।

5. नैसर्गिक शोभाका चित्रण चित्रकारने पूर्णत: बुंदेलखंडी परिवेशके अनुकूल किया है। आमके वृक्ष प्राय: चित्रित किये गये हैं; किन्तु दो लघुचित्रोंमें अपवाद रूपमें ऐसे वृक्ष चित्रित किये गये हैं, जिनकी छोटी पत्तियाँ हैं तथा जिनमें अनेक शाखाएँ भी चित्रित की गयी हैं।

6. इन सभी छत्तीस चित्रोंमें आंचलिक प्रभाव बड़ा स्पष्ट है, बल्कि ये आंचलिक प्रभावकी ही देन हैं। चितेरेने वाल्मीकि रामायणके प्रसंगोंको अपने आसपासके परिवेशमें ही देखा है और अपनी कल्पनाशीलताके बल पर इन प्रसंगोंको रूपायित किया है और इस तरह ये लघुचित्र पूर्णत: बुंदेलखंडी शैलीके प्रतिनिधि रूपायन बन गये हैं, जो ओरछा व दतिया जैसी शैलियोंसे कतई प्रभावित नहीं हैं। पाँच चित्र ऐसे हैं, जो वाल्मीकि रामायणके प्रसंगोंसे हटकर कलाकारने अपनी कल्पना तथा प्रचलित कथाके आधारपर बनाये हैं।

7. कलाकार एकचश्म चेहरोंको बनानेमें सिद्ध है; किन्तु पूर्ण चेहरे उससे सुघड़ताके साथ नहीं बन पाये हैं। सीताको उसने अपने पूरे सौंदर्यके साथ चित्रित किया है। एक चित्रमें कौशल्याके सौन्दर्यको पूरी स्वाभाविकताके साथ चित्रित करते हुए उनके परिधान भी बड़े आकर्षक रूपमें चितेरेने चित्रित किये हैं—विशेष रूपसे उनकी साड़ी, जो बुंदेलखंडी महिलाओंके द्वारा शुभ अवसरोंके समय पहनी जाती है, उसे चित्रित किया गया है तथा उसका रंग भी अन्य साड़ियोंके रंगोंसे पूरी तरह भिन्न है। पीले और मिट्टीके रंगके मिश्रणसे यह रंग चितेरेने तैयार किया होगा।

8. यह शृंखला अपने आपमें सम्पूर्ण नहीं है, क्योंकि कुछ लघुचित्र एक सज्जन अपने साथ ले गये, जिन्हें नहीं लौटाया। किन्तु इस शृंखलामें उपलब्ध चित्र वाल्मीकि रामायणके सभी सात अध्यायोंका प्रतिनिधित्व करते हैं।

9. 'रघुवरविलास'के चित्र और 'रामायण'की शृंखलाके चित्रोंका तुलनात्मक अध्ययन करनेसे यह तथ्य भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि रघुवरविलासके चित्रों तथा वाल्मीकि रामायणके चित्रोंका काल प्राय: एक ही है तथा शैली भी एक ही है; किन्तु वाल्मीकि रामायणके चित्र रघुवरविलासके चित्रोंकी परम्पराको अधिक परिष्कृत रूपमें प्रस्तुत करते हैं। रघुवरविलासके चित्रोंमें जहाँ महिलाओंकी नाक असाधारण रूपसे लम्बी दिखायी गयी है, वैसी नाक इस शृंखलाके चित्रोंमें नहीं मिलती। रघुवरविलासके चित्रोंमें अनुपात भी नहीं है, रंग भी फैले हुए हैं, रेखाओंका संयोजन भी संतुलित नहीं है तथा आकृतियाँ कहीं-कहीं अत्यधिक लम्बी बन गयी हैं; जबकि वाल्मीकि रामायणके इन चित्रोंमें ये कमियाँ नहीं हैं। ये चित्र संतुलित, आनुपातिक और रंग-संयोजनकी दृष्टिसे चितेरेके कौशलकी पुष्टि करते हैं।

10. इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सन् 1855 से 1865 के बीच बुंदेलखंडके इस क्षेत्रमें एक ऐसी लोकशैलीका उदय हुआ, जिसने अपनी परिपक्वता प्रासकी। चरखारी और अजयगढ़ जैसे दूरस्थ अंचलोंमें यह लोकशैली लोक कलाकारकी भक्तिमें आकंठ डूबी तूलिकाकी उत्कृष्ट परिणति बनी।

यह कलम बाहरी शैलियोंके प्रभावोंसे लगभग पूर्णतः अछूती रही तथा इसकी अपनी मौलिक विशेषताएँ रहीं। इस प्रकार बुंदेलखंडकी इस लोकशैलीमें बनाये गये लघुचित्र अपने आपमें उस उत्तर-मध्यकालीन चित्र परम्पराको अभिव्यक्त करते हैं, जो बुंदेलखंडकी अपनी धरोहर रही।

वाल्मीकि रामायणकी उक्त शृंखलाके चित्रोंसे यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि वाल्मीकि रामायणका व्यापक प्रभाव उत्तर-मध्यकालमें मध्य भारतके दूरस्थ अंचलोंमें रहा और इसी प्रभावके कारण कलाकार वाल्मीकि रामायणके प्रसंगों पर चित्र बनानेके लिए प्रेरित हुए।

मध्यकालीन भारतीय चित्रकलामें वाल्मीकि रामायणके अंकन अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं तथा वे इस तथ्यकी पुष्टि करते हैं कि भारतीय चितेरे रंगों और रेखाओंके माध्यमसे केवल आकृतियाँ ही नहीं बनाते थे, बल्कि वे अपनी आस्थाको इन चित्रोंमें प्राणोंके रूपमें प्रतिष्ठित कर दिया करते थे। यही कारण है कि ये चित्र इतने जीवंत रूपमें बने हैं कि उनकी तुलना उन दरबारी चित्रोंसे नहीं की जा सकती, जो केवल अपने रंगोंकी विविधता और रेखाओंके जादुई अंकनके कारण विश्वमें जाने जाते हैं।

वाल्मीकिकी काव्य-साधनाका मूल स्रोत करुणा थी; ऐसी करुणा, जो आदिकविकी प्रेरणा बनी और जिस प्रेरणाने रामायण जैसा कालजयी काव्य रच दिया। रचना साधनाका ही प्रतिफल हुआ करती है। वाल्मीकि रामायणके प्रसंगों पर आधारित ये मध्यकालीन लघुचित्र साधनाके एक अनूठे आयामकी स्वाभाविक और जीवंत अभिव्यक्ति हैं। यही अभिव्यक्ति मानवकी प्रत्येक पीढ़ीकी उपलब्धियोंको जहाँ एक ओर रेखांकित करती है वहीं दूसरी ओर इतिहासके सफों पर मानवकी अदम्य जिजीविषाकी इबारतको सदैवके लिए अंकित कर देती है।

आदिकवि वाल्मीकिका कृतित्व इसी रचना-साधना और जिजीविषाका पर्याय कल भी था, आज भी है और आनेवाले कलमें भी रहेगा।

☆

टी. वी. का दुष्प्रभाव

मेरा नाती
दो वर्ष एक माह का
देखता है टी. वी.
बड़े चाव से
खूब ध्यान से

ढिशुम-ढिशुम खेलना
बहुत पसन्द है उसे
मारने की आक्रामक मुद्रा में
सामने बैठे स्वजन पर
फिर गिर पड़ता है बिस्तर पर
धड़ाम से
खास आवाज के साथ

बन्दूक लाता है
मुझे देकर कहता है
मारो गोली
और मैं बन्दूक लेकर
उस पर निशाना साधकर
घोड़ा दाबता हूँ
वह आननफानन
खास आवाज के साथ
औंधे मुँह गिर पड़ता है

खेल में, मौज में
गाता है गाने
दो-एक शब्दों वाले
और शब्द होते हैं
टी. वी. से लिये
मसलन—
'दीवाना', 'पिया'

यह है टी. वी. का दुष्प्रभाव
मेरे नन्हे नाती के
कोमल, कच्चे
दिल-दिमाग पर!

—डॉ० रमेशकुमार त्रिपाठी

शिव चरित्र

डॉ० श्रीनाथ मिश्र

(पूर्वानुवृत्त, फरवरी 2005)

मन दूसरी तरफ मत देना। भगवान्ने कहा—"मन्मनाभव"—हमको मन दे दो। भक्तने कहा कि हमारे वशमें नहीं है, हम मन नहीं दे सकते हैं। तब कहा कि अच्छा 'मद्भक्तो'—हमारा भक्त हो जा! तब कहा—भक्त होना भी कोई साधारण बात नहीं है—रघुपति भगति करत कठिनई। भक्त नहीं हो सकते हैं। बहुत दुर्लभ है। तब मद्याजि—अच्छा—हमारा यज्ञ, हमारा पूजन किया करो, तब कहा—ये भी कठिन है—पैसा है नहीं यज्ञ कहाँसे करेंगे, कुछ हो तब तो यज्ञ करें।

सिर्फ दर्शनों की उठी है अभिलाषा
साधन अनेक, साधना है बात दूर की।
दान करूँ, धर्म करूँ, मंदिर बनाऊँ दिव्य,
इतनी कहाँ है भला हस्ती मजदूर की॥

भक्त कह रहा है कि—प्रभु! आपका दर्शन करना चाहते हैं पर हमारे पास कोई साधना नहीं है, न मन्दिर बना सकते हैं, न यज्ञ कर सकते हैं, कुछ भी हम नहीं कर सकते हैं—अर्थात् अभाव है। कुछ भी हमारे पास नहीं है, हम कैसे आपका दर्शन प्राप्त करें। एक उपाय जँच रहा है अब उसीको हम करेंगे, तो भगवान्ने कहा—कौन-सा उपाय करेगा—

एक ही उपाय अति सरल मिला है बिन्दु,
शायद इसी से कामना फलेगी।
करूँगा कसूर तो किसी दिन अदालत में,
आकर ही देख लूँगा सूरत हजूर की॥

कसूर करेंगे, कोई अपराध करेंगे तो अपने अदालतमें जब बुलाओगे, उसी समय आपका दर्शन हो जाएगा, और तो कोई उपाय दिखाई नहीं पड़ता है। और तो हमारे पास कोई साधन नहीं है। भक्तने कहा हम यज्ञ आदि भी नहीं कर सकते हैं! तब प्रभुने कहा—अच्छा 'माम् नमस्कुरु'। हमको प्रणाम कर सकता है? तब भक्तने कहा—प्रभु! ये तो जितनी बार आप कहो कर सकते हैं! बड़ा सुन्दर आपने तरीका बताया। अच्छा! बस हमको प्रणाम करना।

कितना सरल है, भगवान् शंकरको प्रणाम करना, श्रीरामको प्रणाम करना, श्रीकृष्णको प्रणाम करना। हम लोग तो प्रणाम भी नहीं कर पाते हैं। प्रणाम माने दंडवत! माताओं-बहनोंको दण्डवत प्रणाम करना मना है! पुरुषको दण्डवत प्रणाम करना चाहिए। हम लोग प्रणाम भी नहीं कर पाते हैं, नहीं तो एक प्रणाममें कल्याण हो जाय। सिर्फ एक प्रणाम!

कूर कुटिल खल कुमति कलंकी।
नीच निसील निरीस निसंकी॥
तेउ सुनि सरन सामुहें आए।
सकृत प्रनामु किये अपनाए॥

सकृत माने—एक बार! अगर एक बार कोई प्रभुको प्रणाम कर दे; उससे प्रणाम बन जाय। सकृत् शब्द बहुत प्रिय है हमारे आचार्योंको। गीतामें भी भगवान् कृष्णने कहा—

सकृत् एव प्रपन्नाय तवास्मिती च याचते।
अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतत् व्रतंमम॥

तुलसीकृत रामचरित मानसमें, श्रीमद्भागवतमें सब जगह आपको सकृत् शब्द मिलेगा। प्रभुको एक बार तुम प्रणाम कर दो, निहाल हो जाओगे। उसीको भरतजी महाराज कह रहे हैं—कूर कुटिल खल, ऐसा व्यक्ति भी हो; पर एक बार प्रभु आपको प्रणाम कर ले, वो निहाल हो जाए! 'विनय-पत्रिका' में लिखा है—

अस कृतज्ञ रघुनाथ कृपानिधि-सकुचत सकृत प्रनाम किए।

एक बारके प्रणाममें प्रभुको संकोच हो जाता है, अपने इस भक्तको क्या उठाकरके दे दें। एक बारका प्रणाम वो प्रणाम बन जाय, उसी प्रणामके लिए हम

लोग मन्दिरमें जाते हैं, ठाकुरजीको प्रणाम करते हैं, इसीलिए प्रयास करते रहते हैं कि किसी दिन एक बार वाला प्रणाम बन जायेगा, तो धन्य हो जाएंगे।

हम लोगोंको तो प्रणाम करनेमें संकोच होता है। अगर सिल्क का कुर्ता पहने हैं, तो दण्डवत प्रणाम नहीं करेंगे, नर कपड़न को डरत है, नरक पड़न को नाही।

सोचता है कि हम प्रणाम करेंगे हमारा कुर्त्ता खराब हो जायेगा, कपड़ाको डर रहा है और ये नहीं डरता कि ठाकुरजीको प्रणाम नहीं करेंगे तो नरकमें पड़ेंगे।

भगवान्ने कहा—प्रणाम तो कर सकता है। डोंगरे जी महाराज कहा करते थे कि तुम ट्रेनमें जा रहे हो, गाड़ीमें; कारमें जा रहे हो, आफिसमें तुम बैठे हो, कहीं पर तुम बैठे हो ऐसा किया करो कि दिन भर में छः-सात बार बैठे-बैठे ठाकुर जीको प्रणाम कर लिया करो। कितना सुलभ मार्ग, सुलभ रास्ता है। जहाँ पर भी रहो दो-चार बार दिनमें प्रभुको प्रणाम कर लो। समझ लीजिए, जो सुलभ चीज है वह याद नहीं आती है और जो दुर्लभ है वह याद पड़ता है! दुर्लभतामें व्यक्तिका आकर्षण होता है। आचार्य कहते हैं—

सुलभं भगवन्नाम जिह्वा स्ववश बर्तिनी।
तथापि नरकं यान्ति किमाऽश्चर्य मतः परम्॥

ठाकुरजीने कहा कि प्रणाम तो कर सकते हो। कहा—प्रभु! प्रणाम तो कर रहे हैं। इसीको तुलसीदास जी भगवान् शंकरसे कह रहे हैं—हे प्रभो! हम और कुछ नहीं कर सकते हैं, इतना कर सकते हैं कि हम आपको प्रणाम कर सकते हैं। भगवान् शंकरकी तरफसे उत्तर है अगर प्रणाम करोगे तो सब हो जायगा, निहाल हो जाओगे और भगवान् तुम्हारी रक्षा भी करेंगे।

आप प्रणाम कर रहे हैं, वह भगवान् शंकर कैसे देवता हैं—बड़े अद्भुत देव भगवान् शंकर हैं। अखिल रसामृत मूर्ति हैं भगवान् शंकर! सावधानीसे सुनियेगा। भगवान् शंकरके पास अग्नि है तो जल भी है! विष है तो अमृत भी है! सबसे बड़े देवता हैं तो भस्म भी लगाए हुए हैं! एकदम विरुद्ध धर्माश्रय आपको मिलेगा शंकरजीमें, इसको विरुद्ध धर्माश्रयत्व कहते हैं।

जिसके गोदमें पत्नी विराजमान है। पहली झाँकी ही शृंगार रस की है! एकदम विरुद्ध धर्माश्रयत्व भगवान् शंकरमें है। लोग कहते हैं कि क्या भगवान् शंकरमें विरुद्ध धर्माश्रयत्व है? क्या एकदम सचमुच भोले ही हैं? कुछ इनको ज्ञान नहीं है क्या! आप भगवान् शंकरका पूरा नाम नहीं जानते हैं। भगवान् शंकरको "भोले भाले" दोनों कहते हैं—जितने भोले हैं उतना ही जो भजन नहीं करते हैं उनके लिए भाला (भाले) भी हैं!

जौ नहि दंड करहु खल तोरा। भ्रष्ट होई श्रुति मारग मोरा॥

दोनों शब्द हैं। हम लोग तो अपने मतलबका याद करते हैं और भूल जाते हैं। माने हैं बहुत कृपालु, बड़े उदार। ये तो सभी शास्त्र, पुराण कहते हैं!

उनकी व्यवस्थामें भी कमी नहीं है। भगवान् शंकरकी व्यवस्था बहुत तगड़ी है। ऐसी व्यवस्था कोई क्या करेगा। क्या व्यवस्था तगड़ी है सुनिए—

मूसक पै सांप राखे, सांप पै मोर राखे,
बैल पर सिंह राखे ताको कहां भीति है।
पूत पै भूत राखे, भूत पै भभूत राखे-

क्या व्यवस्था है भगवान् शंकरकी। अगर चूहा है तो उसके ऊपर साँप है, साँपका भोजन है चूहा, और गणेशजीका वाहन चूहा। साँप कहीं उपद्रव न करने पावे तो मोर है। मोरका भोजन साँप है। भगवान् कार्तिकेयका वाहन है! और बैल शंकरजीका वाहन है। सिंह भगवतीका वाहन है! व्यवस्था देखियेगा।

लड़के बालक अगर गाँवमें देहातमें उपद्रवी हो जाते हैं तो माताएँ कहती हैं कि अभी-अभी भूत बुलाते हैं। तो जिससे गजानन-कार्तिकेय उपद्रव न करने पावें। जब भूत उपद्रव करने लगता हैं तो भभूत-भस्म। उसीसे फू फू भस्म लेकरके झाड़ते हैं तो भूत भाग जाता है! और भूतके ऊपर भभूति—शंकरजी पर है न? और अग्नि है तो जल भी है। गंगाजी सिर पर हैं। एक अग्निका नेत्र है भगवान् शंकरका और एक सूर्य है और

एक चन्द्रमा है! विष है तो अमृत भी है। गलेमें विष और अमृत ऊपर। कामके वशमें जो हो जाता है वह व्यक्ति कुछ साधन इत्यादि नहीं कर सकता है। काम हमारे ऊपर आक्रमण न करने पावे इसलिए भगवान् शंकर अपने बगलमें अपनी पत्नीको रखते हैं। जिसकी पत्नी साथमें है, जिसकी पत्नी पतिव्रता है, जो पति ठीक है उसका काम कुछ नहीं बिगाड़ सकता है। काम उसके पास नहीं जा सकता है, कामकी हिम्मत नहीं पड़ेगी कि उसके पास जाय। पत्नी अगर आपके साथमें है तो पत्नी आपकी कवच है, आप कभी चरित्र भ्रष्ट नहीं हो सकते हैं! भगवान् शंकर उपदेश दे रहे हैं कि कामने हमारे ऊपर काम कई बार आक्रमण करना चाहा, कुछ नहीं कर सका। सोचा कि लक्ष्मणके साथ जब तक उर्मिला रहेगी तबतक तो उसको जींत पाना मुश्किल है। पुष्पवाटिकामें हमने श्रीरामको जींत लिया था, लक्ष्मण बंचा है इसके ऊपर विजय प्राप्त करें। लक्ष्मण जी वैराग्यके मूर्तिमान स्वरूप हैं! लक्ष्मणजी पर विजय हो जाय कामकी तो धर्मकी ध्वजा गिर जाय। वैराग्य समाप्त हो जाय। फिर कामने प्रयास किया—

भगवान् रामचन्द्रको दण्डकारण्यमें शृंगबेरपुरके पास काम ने आक्रमण किया।

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥
दामिनि दमक रह न घन माही। खल कै प्रीति जथा थिर नाही॥

उस समय प्रभुने जो कामकी सेनाका वर्णन किया है, वर्णन करते करते भगवान्ने कहा कामदेवके आक्रमण करने वाले आगेके वीर भी आ गये, दूत भी आ गया, सब-के-सब आ गये। अब कामदेव आक्रमण करनेके लिए आगे बढ़ा। जब उसने देख लिया कि लक्ष्मण भी बगलमें बैठा है तो भाग गया।

बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल॥
देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात।
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब कटकु कटकि मनजात॥

कामदेवकी फिर हिम्मत नहीं हुई।

भगवती उर्मिलाके ऊपर जिस समय कामने आक्रमण किया है यहाँ भी पति साथमें नहीं है। कामदेवने सोचा अगर लक्ष्मण पर विजय नहीं कर सके तो चलो इसकी पत्नी पर ही विजय कर लो। हम विजयी हो जायेंगे। कामदेवके पास फूलका बाण होता है और फूलका ही धनुष होता है।

काम कुसुम धनु सायक लीन्हे।

जब प्रहार करनेके लिए उद्यत हुआ, तो उस समय भगवती उर्मिलाने कहा—

मुझे फूल मत मारो।
मैं अबला बाला वियोगिनी कुछ तो दया विचारो।
मुझे विकलता तुझे विफलता ठहरो श्रम परिहारो॥

भगवती उर्मिलाने कहा कि काम उसी जगह रुक जाना, तुम मुझे भले ही व्याकुल कर सकते हो पर तुमको विफलता मिलेगी इसलिए अच्छा है कि रुक जाओ, थक गये हो, अगर तुम्हारे में हिम्मत हो तो एक बार हमारे सिन्दूर बिन्दु की तरफ देख लो। ये सिन्दूर बिन्दु हमारा है, ये भगवान् शंकरका तीसरा नेत्र है, आज भी तुमको भस्म कर सकता है।

बल हो तो सिन्दूर बिन्दु यह है हर नेत्र निहारो।
लो यह मेरी चरण धूरि उस रति के सिर पर डारो॥

तुम्हारी पत्नी रति है, हमारे चरणकी धूलको ले जाकरके उसके सिर पर रख दो; वह भी धन्य हो जायगी। मेघनादकी पत्नी सुलोचनाने कह दिया ये लक्ष्मणका और हमारे पतिका युद्ध नहीं था, ये दो पतिव्रताओंका युद्ध था। असाधारण युद्ध था, दोनोंको कोई नहीं मार सकता था, क्योंकि दोनोंकी पत्नी पतिव्रता थीं। कोई नहीं मरता; लेकिन बड़े दुःखके साथ सुलोचना कही कि—हमारा पातिव्रत कमजोर पड़ गया, क्योंकि हमारे पतिने अधर्मका साथ दिया और उर्मिलाके पतिने धर्मका साथ दिया।

काम पै वाम राखे ऐसे जग रीति हैं,
मनत शिवराम देखो शंकर की चातुरी

(सावशेष)

वाल्मीकीय रामायण तथा मानवाधिकार

डॉ० अमरनाथ पाण्डेय

(पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, म. गाँ. काशी विद्यापीठ)

वाल्मीकीय रामायणमें मानवाधिकारकी प्रतिष्ठा मिलती है। वाल्मीकिने रामायणके माध्यमसे समाजका आदर्श रूप प्रस्तुत किया है। उन्होंने उस समाजकी स्थापना की है, जिसमें न्याय है, समानता है, बन्धुत्व है, उत्कृष्ट व्यवस्था है, सामरस्य है। रामायणने उस मार्गका निर्माण किया है, जिस पर चलनेका सभीका अधिकार है, जहाँ भेदभाव नहीं है। वह मार्ग सभीको लक्ष्य तक पहुँचाने वाला है। ऐसे लक्ष्यका भी निरूपण है, जिसको व्यक्ति अपनी साधनासे प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार मार्ग सभी मनुष्योंके लिए निर्मित हुआ है और लक्ष्यका द्वार भी सभीके लिए खुला हुआ है। वाल्मीकिने इस प्रकारके समाजका दर्शन प्रस्तुत किया है, जो सार्वभौम सिद्धान्त पर अधिष्ठित है, सार्वकालिक है और विश्वके सन्दर्भमें कहीं भी प्रयुक्त हो सकता है।

रामायणमें रामका चरित निबद्ध है, सीताका चरित निबद्ध है। इनके माध्यमसे अनेक कथानक, अनेक चरित प्रस्तुत किये गये हैं जो संस्कृति तथा समाजकी भूमिका प्रकाशित करते हैं, जिससे आज भी प्रेरणा मिल रही है तथा मानवकी आकाङ्क्षाओंका उन्मीलन हो रहा है। वाल्मीकिने राम तथा सीताके चरितका आश्रय लिया। यही मूल बिन्दु है। कविने चरित-निबन्धनके माध्यमसे मानवाधिकारकी घोषणा की। यह निरूपित किया गया है कि मनुष्य श्रेष्ठ है और वह ज्ञान तथा कर्मसे कुछ भी प्राप्त कर सकता है। यद्यपि परम्पराने रामके चरितको ही महत्त्व प्रदान किया है, किन्तु वाल्मीकिका स्पष्ट निर्देश है कि सीताका चरित ही सम्पूर्ण रामायण-काव्य है—

'कृत्स्नं रामायणं काव्यं सीतायाश्चरितं महत्।'

बालकाण्ड-4.7

रहस्य यह है कि कविने मूलरूपमें स्त्रीमर्यादा, उसके वैशिष्ट्य, उसकी उत्कृष्टता, उसकी साधना और उसके त्यागकी प्रतिष्ठाके लिए रामायणकी रचना की। परीक्षा करने पर यही बात सामने आती है कि सम्पूर्ण घटना-क्रम सीताके चरित्रके चारों ओर घूमता है। कवि यह प्रकाशित करता है कि स्त्रीके उत्कर्ष तथा महत्त्वको स्वीकार करना है, क्योंकि समाजकी आधारशिला वही है। उसी पर समाज तथा राष्ट्र अधिष्ठित है।

आज जो यह प्रश्न उठ रहा है कि स्त्रीके अधिकारोंकी व्याख्या होनी चाहिए, उसे समान अधिकार दिये जायँ, उसको वाल्मीकिने पहले ही देख लिया था। सीताका चरित ही रामायण-काव्य है। उसकी उपस्थापनाके लिए रामायणकी रचना की गयी है। सीताके चरितकी महिमा सम्पूर्ण काव्यमें व्याप्त है। सीताके माध्यमसे स्त्रीका आदर्श स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। सीता वाल्मीकिके आश्रममें रहीं। वाल्मीकि सीताके चरितके साक्षी थे। उनके चरितसे कवि प्रसन्न थे। यही कारण है कि कविने मनोयोगसे उनके चरितका उपवर्णन किया है। सीताका चरित रामायणकी घटनाओंको अत्यधिक प्रभावित करता है। उसीके कारण कथामें गति आती है। सीताके चरितके द्वारा तपस्या तथा साधनाका परम लक्ष्य प्रकाशित कर दिया गया है। वाल्मीकिकी जो दृष्टि थी उसका समीचीन अनुगमन नहीं हो सकता है। कवियों तथा विद्वानोंकी दृष्टि सीताके चरित पर कम केन्द्रित रही है, जिससे रामके चरितकी तुलनामें सीताका चरित कुछ दब-सा गया है। यह विशेष ध्यातव्य है कि स्त्री-मर्यादा तथा महिमाका उत्कृष्ट निदर्शन वाल्मीकिकी कृतिमें मिलता है। आज मानवाधिकारके सन्दर्भमें सीताका चरित प्रेरक तथा निर्देशक है।

रामका चरित मानवाधिकारके लिए समर्पित है।

रामायण यही सन्देश देता है कि न्यायकी पथ पर चलनेवाले प्रत्येक व्यक्तिका अधिकार है कि वह अपने कर्तव्यका पालन कर सके। उसके मार्गमें किसी प्रकारकी बाधा न आये। शासन यह देखे कि अन्याय करने वाली प्रवृत्तियोंका दमन हो और सन्मार्गपर चलनेवालेकी रक्षा हो। राम ऐसा विचार नहीं करते कि किसी विशेष वर्ग या जातिके व्यक्तिके ही अधिकारोंकी रक्षा हो।

विश्वामित्र तथा अरण्यकाण्डके ऋषि अपनी तपस्या, अपनी साधनामें लगे रहते थे। यज्ञ करते थे। राक्षसों द्वारा वे प्रताड़ित थे। उनके योग, उनकी साधनामें अवरोध उत्पन्न होता था। विश्वामित्रने दशरथसे प्रार्थना की थी और राम-लक्ष्मण उनके साथ गये। विश्वामित्रने कहा था कि राम राक्षसोंके विनाशमें समर्थ हैं—

शक्तो ह्येष मया गुप्तो दिव्येन स्वेन तेजसा॥
राक्षसा ये विकर्तारस्तेषामपि विनाशने॥

बाल०-19.9-10

विश्वामित्रने ताटकाका वध करनेके लिए रामको प्रेरित किया। उन्होंने कहा कि हे राम, आपके अतिरिक्त अन्य कोई उसका वध नहीं कर सकता। यह स्त्री है—ऐसा समझकर इसके प्रति दया मत कीजिए। चारों वर्णोंके हितके लिए इसका वध कीजिए। यह अधर्म करनेवाली है—

न ह्येनां शापसंसृष्टां कश्चिदुत्सहते पुमान्।
निहन्तुं त्रिषु लोकेषु त्वामृते रघुनन्दन॥
न हि ते स्त्रीवधकृते घृणा कार्या नरोत्तम।
चातुर्वर्ण्यहितार्थं हि कर्तव्यं राजसूनुना॥
नृशंसमनृशंसं वा प्रजारक्षणकारणात्।
पातकं वा सदोषं वा कर्तव्यं रक्षता सदा॥
राज्यभारनियुक्तानामेष धर्मः सनातनः।
अधर्म्यां जहि काकुत्स्थ धर्मो ह्यस्यां न विद्यते॥

बालकाण्ड-25.16-19

रामने कहा था कि मैं गो-ब्राह्मण तथा देशके हितके लिए आपके वचनके अनुसार कार्य करनेके लिए उद्यत हूँ—

गोब्राह्मणहितार्थाया देशस्य च हिताय च।
तव चाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः॥

बालकाण्ड-26.5

रामने ताटकाका वध तथा राक्षसोंका संहार किया।

अरण्यकाण्डमें राक्षसोंके वधके प्रसङ्गमें सीताने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न सामने रखा है। वे कहती हैं—कामज व्यसन तीन प्रकारके होते हैं—मिथ्यावाक्य, परदाराभिगमन तथा विना वैरके रौद्र कर्म—

त्रीण्येव व्यसनान्यत्र कामजानि भवन्त्युत।
मिथ्यावाक्यं परमकं तस्माद् गुरुतरावुभौ॥
परदाराभिगमनं विना वैरं च रौद्रता।

अरण्यकाण्ड-8.3

सीता कहती हैं कि जो वैर नहीं करता, उसकी हिंसा नहीं करनी चाहिए। राक्षस रामसे तो वैर नहीं कर रहे हैं, अतः उनका वध नहीं करना चाहिए। सीताका प्रश्न पारम्परिक चिन्तनके आधार पर था। प्रकृत प्रसङ्गमें रामका उत्तर समीचीन है। वे कहते हैं कि मुनियोंका संरक्षण करना है। इसके लिए आवश्यक है कि जो राक्षस मुनियोंके धार्मिक कार्योंमें बाधा उत्पन्न कर रहे हैं, उन्हें दण्डित किया जाय। यद्यपि राक्षसोंने रामकी कोई हानि नहीं की है, किन्तु ऋषियोंको तो पीड़ित किया है, अन्य प्राणियोंको कष्ट दिया है।

प्रश्न मानवाधिकारकी रक्षासे सम्बद्ध है। शासकका कर्त्तव्य है कि यदि मानवका अधिकार कहीं बाधित होता है, तो उसके लिए अनुशासनात्मक व्यवस्था की जाय। यह नहीं देखना है कि जब कोई व्यक्ति स्वयं प्रभावित हो, तभी उसका प्रतिकार करे। यह समाजका प्रश्न है। यदि समाजमें कहीं भी किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित की जा रही है, तो उसको रोकनेकी पूरी व्यवस्था होनी चाहिए।

राम प्रजा परिपालक हैं। वे इसी दृष्टिसे इस प्रकरणको लेते हैं और ऋषियोंके अधिकारकी सुरक्षाके लिए राक्षसोंको दण्डित करते हैं। रामके समयमें

मानवाधिकारकी इस उदात्त भावभूमिका दर्शन होता है। रामने ऋषियोंकी रक्षाके लिए प्रतिज्ञा की है। वे उसका पालन अवश्य करेंगे। वे अपने जीवनका परित्याग कर सकते हैं, सीता-लक्ष्मणका परित्याग कर सकते हैं, किन्तु समाजकी रक्षा रूपी व्रतका परित्याग नहीं कर सकते। राम अपनेको समाजका सेवक मान रहे हैं। यदि समाज पीड़ित होता है, तो वे पीड़ित होते हैं। इस प्रकार राक्षसोंका ऋषियोंके प्रति वैर रामके प्रति भी हो जाता है। समाज पीड़ित होता रहे, राम देखते रहें—यह नहीं हो सकता। रामने सीताके प्रश्नको व्यापक सन्दर्भोंमें देखा है और समाजको केन्द्रमें रखकर उसका समाधान प्रस्तुत किया है। राम सीतासे कहते हैं—

ऋषीणां दण्डकारण्ये संश्रुतं जनकात्मजे।
संश्रुत्य च न शक्ष्यामि जीवमानः प्रतिश्रवम्॥
अरण्य०-10.17

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्॥
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः।
तदवश्यं मया कार्यमृषीणां परिपालनम्॥
वही-10.18-19

यदि रामका यह चरित सामने रखा जाता, उसके निर्देशोंका अनुसरण होता, तो मानवाधिकारकी अनेक समस्याओंका समाधान हो जाता।

रावणने अपनी बहन शूर्पणरखाका विवाह दानवराज विद्युज्जिह्वसे किया था। उसने विद्युज्जिह्वको मार डाला। रावण अत्यन्त कामी था। यह उसका सबसे बड़ा दोष था। वह सीताको अपनी भार्या बनाना चाहता था। उसकी न तो कोई नीति थी और न ही कोई धर्म। वह राजाके गुणोंसे रहित था। रावणके वधसे प्रकट होता है कि रामने अनियन्त्रित कामको नष्ट किया और स्त्रीमर्यादाकी प्रतिष्ठा की। शूर्पणखा, रावण तथा बालीमें काम विकृत रूपमें विद्यमान है। इसका निराकरण दण्ड द्वारा ही किया जा सका है। मारीचने रावणसे कहा कि कामवृत्त तथा दुर्मति राजा अपनेको; स्वजनको तथा राष्ट्रको नष्ट कर देता है—

त्वद्विधः कामवृत्तो हि दुःशीलः पापमन्त्रितः।
आत्मानं स्वजनं राष्ट्रं स राजा हन्ति दुर्मतिः॥
अरण्य०-37.7

मारीचने रामको विग्रहवान् धर्म कहा है—

रामो विग्रहवान् धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवानामिव वासवः॥
वही-37.13

रामकी वानरजातिके प्रति मित्रता प्रसिद्ध है। वानर वनमें रहते थे। उनकी संस्कृति भिन्न थी, फिर भी रामने उनसे मित्रता की। राम हनुमानकी प्रशंसा करते हैं। कहते हैं कि हनुमानने निश्चित ही समग्र व्याकरणका श्रवण किया है, जिसके कारण इन्होंने कहीं भी अपशब्दका प्रयोग नहीं किया है। राम कहते हैं कि जिसका दूत हनुमान-जैसा होगा, उसके कार्य क्यों नहीं सिद्ध होंगे? हनुमानके कारण ही राम तथा सुग्रीवकी मित्रता होती है। रामने पहले सुग्रीवसे यह पूछा कि वैरका कारण क्या है? जब उन्हें मालूम हो गया कि बालीने अपराध किया है, सुग्रीवको पीड़ित किया है, उसकी भार्याका अपहरण किया है, तब उन्होंने सुग्रीवसे कहा कि बालीका वध करूँगा। रामने बालीका वध किया और सुग्रीव तथा उसकी भार्या रुमाका मिलन हुआ। रामने वानर-संस्कृतिमें परिष्कार किया।

बालीने सुग्रीवकी पत्नी रुमाका अपहरण किया था। उसने मर्यादाका उल्लङ्घन किया था। राम धर्मकी प्रतिष्ठा करनेवाले हैं। मानवाधिकारकी रक्षा धर्म है। रामने बालीके वधके औचित्यका प्रतिपादन किया है। जो लोक विरुद्ध कार्य है, उसके लिए दण्ड आवश्यक है। दण्डके अतिरिक्त अन्य निग्रह समीचीन नहीं हैं। राम कहते हैं कि जो अपनी लड़की, बहन अथवा अनुजकी भार्यामें काम-वासना रखता है, उसके लिए दण्ड वध ही है—

औरसीं भगिनीं वापि भार्यां वाप्यनुजस्य यः॥
प्रचरेत् नरः कामात् तस्य दण्डो वधः स्मृतः।
किष्किन्धा०-18.22-23

(सावशेष)

मनके जीते जीत : मनके हारे हार

ब्र० श्रीगिरीशानन्द महाराज

प्रवचन संकलन : श्रीमती कुन्ती धर्मचन्द जालान

(पूर्वानुवृत्त, फरवरी 2005)

भागवत—जो उपनिषद्का सार है—के अनुसार सृष्टिकी प्रक्रिया थोड़ी भिन्न है! सबसे पहले परब्रह्म परमात्मा अकेला है, उसने अपनी माया-शक्तिको स्वीकार किया, जिसके परिणाममें काल, कर्म, स्वभाव—तीन शक्तियाँ उत्पन्न हुईं और काल-शक्तिके द्वारा प्रकृतिमें क्षोभ हुआ, जिससे त्रिगुणमयी जो प्रकृति है—सत्व-रज-तम-तीनोंकी साम्यावस्थाका नाम प्रकृति है, जन्म हुआ—अहंकारका जन्म हुआ और अहंकार तीन भागोंमें विभक्त हो गया—सात्विक-अहंकार, राजस-अहंकार और तामस-अहंकार। अब वह बड़ी भारी प्रक्रिया है—तामस-अहंकारसे आकाश हुआ, वायु हुई, अग्नि हुआ, जल हुआ, पृथ्वी हुई; राजस-अहंकारसे सारी इन्द्रियोंका जन्म हुआ और बुद्धि और प्राणका जन्म हुआ; और सात्विक-अहंकारसे मनकी उत्पत्ति हुई। भागवतका दूसरा स्कन्ध उठाकर देख लें—मनकी उत्पत्ति सात्विक-अहंकारसे है। अभिप्राय?

हमारे श्रीमहाराजजी कहते हैं कि यह जो मन है यह जन्मजात सात्विक है। जैसे कोई जन्मजात ब्राह्मण होवे और नीचताके कर्म करने लग जाय तो उसके लिए लोग बोलते हैं कि यह शूद्र हो गया। ऐसे ही आपका मन सात्विक है-जन्मजात-सात्विक है, पर अब यदि आपका मन तामसिक और राजसिक हो रहा है तो उसमें मनका दोष नहीं है, उसमें मनपर नियन्त्रण करनेवाला कौन है-आप और हम-उसको जीवात्मा कह लो, मनुष्य कह लो-जो आपकी मर्जी हो सो कह लो-मन पर नियन्त्रण करने वाले आप और हम हैं; इसलिए अगर हमारा मन तामसी है, हमारा मन राजसी है तो इसके जिम्मेदार आप और हम हैं। हमने मनको गलत दिशामें लगाया, इसलिए मन वैसा हो गया। अब वह उपद्रव करता है।

आप जानते हैं—अपने देशके इतिहासमें अनेक ऐसे उपक्रम हैं—पहले कोई नेता आतंकवादीको बढ़ावा देता है अपनी सुरक्षाके लिए और फिर वही आतंकवादी उसी नेताको मारता है कि नहीं मारता? तो, जहाँ आप गलत रास्तेको बढ़ावा देंगे वह उलट कर आपके ऊपर ही पड़ेगा—यह ध्यान रखना। आप कहेंगे कि हमने मनको कहाँ बिगाड़ा, हम तो भजनमें जाते हैं, सत्सङ्गमें जाते हैं, साधना करते हैं और प्रयास करते हैं कि हमारा मन ठीक रास्ते पर जाय—प्रयास कर रहे हैं; लेकिन, एक घण्टा यह प्रयास करते हैं और तेईस घण्टा? तेईस-घण्टा किसका प्रयास करते हैं? कितने जोड़ी कपड़े हैं आपके पास जरा बताओ? पचास जोड़ा, पच्चीस जोड़ा—कितने हैं बताओ? कितनी साड़ियाँ हैं बताओ? कितनी जोड़ी चप्पलें हैं? बुरा नहीं मानना—यह बुद्धिकी खुराक नहीं है, यह मनकी खुराक है। आपने मनको कहाँ लगाया है? आप, एक घण्टा सत्सङ्गमें आते हैं, बाकी तो सब 'माइनस' ही चल रहा है ना? तो ''प्लस'' तो बहुत थोड़ा है आपके जीवनमें। कहाँसे आपके मनको सत्त्वगुणी शक्ति मिलेगी? एक महात्मा बड़ी सुन्दर बात कहते थे। कहते—पन्चानबे प्रतिशत लोगोंका प्रश्न होता है कि महाराज, मन वशमें नहीं होता है। और आपका ही क्या, अर्जुनका भी, तो यही प्रश्न था—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथी बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

गीता-6.35

और केवल अर्जुनका ही प्रश्न नहीं था, भगवान् कृष्णने भी अर्जुनके प्रश्नका समर्थन किया—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।

गीता-6.34

आप कहेंगे कि हमने मनको कहाँ बिगाड़ा? तो आपको मैं किसी महात्माका सुनाया हुआ एक दृष्टान्त सुनाता हूँ—आपका एक नन्हा-सा बेटा है। वह बेटा कहता है कि हमको सोनेकी चेन चाहिए। अब एक दिन आपने बेटेको कहा कि जाओ, सब्जी-मण्डी चले जाओ वहाँ चेन मिल जायेगी। वहाँ गया बेटा, सारा दिन ढूँढा, वहाँ चेन नहीं मिली। सब्जी-मण्डीमें सोनेकी-चेन कैसे मिलेगी! नहीं मिली। आकर बोला—पिताजी नहीं मिली चेन। अगले दिन पिताने मार्बलके बाजारमें भेज दिया। वहाँसे भी लौट आया, वहाँ भी नहीं मिली। तीसरे दिन उन्होंने पसारीके यहाँ भेज दिया, जो खाने-पीनेका सामान रखता है-वहाँ भी नहीं मिली; चौथे दिन आप जहाँ भेजोगे वहाँ वह जायेगा या आपसे झगड़ पड़ेगा? क्यों? झगड़ पड़ेगा या आपकी बात मानकर जायेगा? झगड़ पड़ेगा! क्योंकि आपने उसको 'मिस-गाईड' किया, आपने उसको गलत जगह भेजा। यह तो हो गया दृष्टान्त, अब आ जाइए दार्ष्टान्त पर—हमारे-आपके जीवनपर!

यह हमारा मन हमसे क्या चाहता है कि हमको आनन्द चाहिए। यही माँगता है या और कुछ माँगता है? पैसा चाहता है तो आनन्दके लिए, पद चाहता है तो आनन्दके लिए, मिठाई चाहता है तो आनन्दके लिए, कपड़ा चाहता है तो आनन्दके लिए—सब जितनी वस्तु, व्यक्ति, स्थान हैं—उन सबके पीछे यदि एक शब्द रखा जाय तो वह है ''आनन्द''। तो मन क्या चाहता है कि 'आनन्द'! आनन्द चाहता है और कैसा आनन्द चाहता है जो हमेशा रहता है वह, या जो थोड़ी देर रहे वह? जो हमेशा रहे! और हमेशा रहनेवाले आनन्दकी खोजमें जो मन है उसको आपने स्थान कौन-से बताए हैं कि यहाँ आनन्द मिलेगा! उसने पूछा आनन्द कहाँ मिलेगा तो आपने कहा—मर्सिडिज गाड़ी ले आओ, तो आनन्द मिल जायेगा! गाड़ी आ गयी, दस-पन्द्रह दिन आनन्द भी रहा। फिर आनन्द होता है कि 'टेन्शन' होता है? माँगनेवालेका टेन्शन, बेटेका टेन्शन, भाईका टेन्शन, ड्राइवरका टेन्शन, पेट्रोल बेच देगा यह टेन्शन—आप ही सोचो टेन्शन होता है कि आनन्द होता है? गाड़ीमें सुख मिला मनको? नहीं मिला! धोखा खाया!! फिर मनने कहा—अब कहाँ सुख मिलेगा? तब बोले—बँगला बनाओ, बँगला! कोठी बनाओ, फ्लैट बनाओ—बहुत बड़ा। फ्लैट बन गया। थोड़े दिन आनन्द भी हुआ—जब पार्टी-वार्टी हुई और लोगोंने तारीफ की—बहुत-अच्छा, बहुत अच्छा और उसके बाद-आज नल खराब है, आज बिजली खराब है, कल ए० सी० खराब है, परसों यह खराब है, नरसों यह खराब है—न खा सकते हो, न सो सकते हो। तो आनन्द मिला कि दुःख मिला? आप सोचोगे कि स्वामीजी सबको बाबाजी बनाने वाले हैं, पर मेरेको भरोसा है कि आप बनोगे नहीं, पक्के हो सब—प्रेमपुरीके श्रोता हो न !

एक बार पण्डित रामकिंकरजी महाराज यहाँ कथा कर रहे थे। तो अगले दिन किसी श्रोताने उनसे कहा कि महाराज, आपकी कथामें तो 'बुलेट' चलते हैं बुलेट। दूसरे श्रोताने कहा कि महाराज बुलेट तो चलते हैं पर यहाँके श्रोता ''बुलेट-प्रुफ'' हैं।

तो, बोले—बँगला बनाओ, बँगला बना दिया, सुखी नहीं हुआ। दूसरी बार धोखा हुआ। तीसरी बार बोले—अब कहाँ सुख मिलेगा? तो बोले—''बैंक-बैलेंस'' बढ़ाओ। वह भी बढ़ गया। पर, ''बैंक-बैलेंस'' बढ़ानेमें सुख मिलता है कि दुःख मिलता है? कमानेमें दुःख, सुरक्षामें दुःख, फिर किसको लिखें—अपने सामने बेटेको भी बताते नहीं कि क्या लिखा है, नहीं तो क्या पता जीते-जी राम-नाम-सत्य कर दे—कहाँ सुख

है? बेटेको नहीं बता सकते हो! किस बातका सुख है आपको? चुपचाप लिखकर रख देते हैं कि मर जायेंगे और बादमें निकालेगा तो ठीक है, पहले नहीं दिखाते हैं कि क्या लिखा है वसीयतमें। क्यों भाई, सुख मिला? कमानेमें दुःख, सुरक्षाकी चिन्ता—इनकम-टैक्सका छापा पड़ जायेगा, माँगने-वाले आजायेंगे, इधर-उधरके लोग आजायेंगे और फिर देनेका दुःख—किसको देवें यह समस्या। यह तो मैंने आपको केवल तीन 'एक्जाम्पल' दिये।

मनको आपने कम-से-कम बीस, पच्चीस, पचास बार धोखा दिया है—बुरा नहीं मानना! आपने उसको ऐसे स्थान बताये हैं जहाँसे उसको बार-बार लौटना पड़ा है। वह चाहता है सच्चा सुख, लेकिन आपने उसको जितने स्थान बताये—वे सब नकली-सुखके बताये। टी० वी० देखनेमें सुख मिलेगा, विवाह करनेमें सुख मिलेगा, अच्छा बेटा हो जानेमें सुख मिलेगा-आश्चर्य है-यह मनुष्य भगवान्‌से झगड़ा करनेके लिए तैयार है-आपने बेटा नहीं दिया है तो दूसरेका गोद ले लेते हैं-भगवान्‌को ललकार देते हैं—तू नहीं देगा बेटा तो क्या बात है, मैं दूसरेका बेटा ले लूँगा—गोद ले लेते हैं और फिर वह आफत होती है कि भगवान् ही बचावें उनको। अरे, भगवान्‌ने नहीं दिया तो तुम क्यों आफतमें पड़ते हो? इतनी जगह आपने मनको धोखा दिया है अब आप बताओ ईमानदारीसे कि जिसको आपने बीस बार धोखा दिया अब इक्कीसवीं बार उसका कर्त्तव्य क्या है? आपकी बात माने कि नहीं माने? आप ही बताओ। नहीं माने ना! तो अब क्यों रोते हो कि मन हमारी बात नहीं मानता है? देखो, इसमें गलती मनकी नहीं है, गलती हमारी है।

आप देखो, मनकी कितनी-कितनी विलक्षणताएँ हैं—आप एक गोपीका मन देखो। गोपी कहती है कि मैं परेशान हो गयी हूँ। बोले—क्या परेशानी है? वह कहती है कि मैं प्रातःकाल गैयाका दूध निकालने जाती हूँ तब मेरेको बगलसे आवाज सुनायी पड़ती है कि मेरा लाला कह रहा है कि अरी गोपी! थोड़ा दूध मेरे मुखमें निकाल दे। उसके मुखमें निकालती हूँ तो सारा दूध बर्तनसे बाहर जमीन पर चला जाता है, बर्तन खाली-का-खाली रह जाता है। मैं क्या करूँ? फिर, घरकी सफाई करती हूँ। तब बार-बार मुझको लगता है कि वह बीचसे दौड़ रहा है; फिर बार-बार सफाई करती हूँ और जब सासु देखती है कि यह दिन भरसे सफाई ही करती जा रही है तो डाँटती है और कहती है कि यह पगली हो गयी है। तब मैं ध्यान करके देखती हूँ कि क्या लाला है यहाँ, तो लाला तो वहाँ नहीं होता है। किसीने पूछा तो यहाँ तू कर क्या रही है? बोली—ध्यान कर रही हूँ कि लाला अगर एक-आंध हफ्तेके लिए मेरे दिलसे बाहर निकल जाय तो मेरा जीवन सुव्यवस्थित हो जाय।

तो, यह भी तो मन है न! आपका-हमारा भी मन है और गोपीका भी मन है! तो, आपका मन यदि भगवान्‌में नहीं लगता है तो—बुरा नहीं मानना, हमने मनको उग्रवादी बना रखा है! अब समय लगेगा इसको सुधारनेमें। जब कोई बच्चा जिद्दी हो जाता है तब उसको विश्वासमें लेनेमें समय लगता है! इसका अर्थ यह है—घबड़ाना नहीं, सत्सङ्गमें आते रहो, साधना करते रहो, जब उसको ठीक-ठीक भगवद्-रस मिल जायेगा तब आपका मन ऐसा सेवक बनेगा कि दुनियामें कोई आपका वैसा सेवक नहीं होगा। यह वही मन है।

मनको कैसे अपने अनुकूल बनावें? यह मन सत्त्वगुणी है, इसके विचार वास्तवमें सात्त्विक हैं, लेकिन हमने इसको गलत जगह लगाया हुआ है। यह शाश्वत-सुख चाहता है और हमने इसको दुःख-शालामें लगा रखा है, संसारमें लगा रखा है। यह मन आपका विरोधी हो चुका है। क्या करें?

(सावशेष)

कबीरदासके मूल स्वरूपपर पड़े आवरण

श्रीविष्णुकान्त शास्त्री

(पूर्वानुवृत्त, फरवरी 2005)

हाँ, उन्होंने अगले श्लोकमें यह जरूर कहा कि अव्यक्तके उपासकोंको अधिक क्लेश होता है; क्योंकि अव्यक्त, निराकारके प्रति निष्ठा देहधारियोंको कठिनाईसे प्राप्त होती है। इससे यह स्पष्ट है कि जो देहाध्यासके ऊपर उठ चुका है उसके लिए अव्यक्तकी उपासना क्लेशकर नहीं होती। यदि कोई कहे कि यहाँ उपासनाकी बात है, भक्तिकी नहीं, तो यह मीन-मेख निकालने जैसी बात होगी। भक्ति योगके अंतर्गत सगुण साकारकी उपासना यदि भक्ति है तो अव्यक्त निराकारकी उपासना भी भक्ति ही है। पर ऐसे लोगोंके संतोषके लिए मैं गीताका एक और श्लोक उद्धृत करना उचित समझता हूँ :

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तः स्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्॥[1]

(अर्थात्, हे पार्थ, वह परम पुरुष जिसके भीतर समस्त भूत रहते हैं, जिससे यह संपूर्ण जगत् विस्तृत हुआ है या ओतप्रोत है; किन्तु अनन्य भक्ति से प्राप्त किया जाता है।) इस श्लोकसे यह अभ्रांत रूपसे स्पष्ट है कि भारतीय भक्ति परंपरामें अव्यक्त, निराकार परमात्माकी भक्तिका भी विधान था। उपनिषदों, गीता आदिकी यह परंपरा आगे भी चलती रही हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीने निर्गुण निराकार ब्रह्म तत्त्वकी उपासनाके लिए पंचदशीके उद्धरण प्रस्तुत किये हैं।[2] अतः आचार्य शुक्लका यह कथन अस्वीकार्य है कि निराकार परमेश्वरकी भक्ति कबीरको सूफियोंसे ही मिली थी।

कबीरदासको रहस्यवादी माननेवाले विद्वान उन्हें सूफी बताते हैं या सूफी साधनासे अत्याधिक प्रभावित मानते हैं। विचारकी कसौटी पर चढ़ाए जाने पर ये दोनों मत भी खरे नहीं उतरते। कबीरको सूफी बताने वालोंका तर्क है कि वे मुसलमान परिवारमें पैदा हुए थे, शेख तकीके शिष्य थे, एकेश्वरवादी थे। सूफी साधनासे उन्हें अत्याधिक प्रभावित मानने वाले विद्वान उनकी प्रेम-साधनाको सूफी प्रेम-साधनाके अनुरूप बताते हैं।

यह ठीक है कि कबीरदास मुस्लिम परिवारमें पैदा हुए थे और यह भी सही है कि अपने समयके वैष्णवों और योगियोंके साथ जैसे उन्होंने सत्संग किया था, वैसे ही सूफी, फकीरों, पीरोंसे भी उन्होंने सत्संग किया था; किन्तु यह ठीक नहीं है कि वे शेख तकीके शिष्य थे। कबीर गुरु और परमात्मामें कोई अंतर नहीं मानते थे। उनकी निष्ठा थी, 'कबीर गुरु गोविन्द तो एक है।'[3] इसीलिए उन्होंने गुरुकी महिमाको अनंत बताया था, उनके उपकारोंको भी वे अनंत मानते थे; क्योंकि उन्होंने ज्ञानके अनंत लोचनोंको उद्घाटित कर अनंत असीम प्रभुके दर्शन कबीरदासको कराए थे :

कबीर सतगुरुकी महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावण हार॥[4]

उन सद्गुरुने कबीरदासको रामनामका महामंत्र प्रदान किया था, जिसकी तुलना किसीसे हो ही नहीं सकती। उसके बदले क्या देकर गुरुको संतुष्ट किया जाय, यह कबीरदास समझ ही नहीं पाये। अतः गुरु दक्षिणा देनेकी आकांक्षा कबीरके मनमें ही रह गयी :

कबीर राम नामके परंतरै, देवै कौ कछु नांहिं।
क्या ले गुरु संतोषिये, हौंस रही मन मांहिं॥[5]

अब इस *संदर्भमें शेख तकीके संबंधमें कबीरकी*

---

1. *श्रीमद्भगवद्गीता, 8.22*
2. *कबीर, पृ. 122-123*
3. *डॉ. माता प्रसाद गुप्त द्वारा संपादित कबीर ग्रंथावली, साखी 1.26*
4. *वही, साखी 1.3*
5. *वही, सांखी 1.4*

उक्तियोंपर विचार करने पर यह तो स्वीकार्य है कि उन्होंने शेख तकीसे सत्संग किया था, क्योंकि उन्होंने स्पष्ट लिखा है, मानिकपुर कबीर बसेरी। मुद्दति सुनी शेख तकी केरी।[6] पर यह स्वीकार्य नहीं है कि शेख तकी कबीरके गुरु थे। कबीरदासने शेख तकीको निम्नलिखित दोहेमें ऐसे संबोधित किया है जैसे शेख तकीको वे उपदेश दे रहे हों: नाना नाच नचायके, नाचे नटके भेष। घट घट अविनःसी बसै, सुनहु तकी तुम सेख॥[7] फिर यह अकल्पनीय है कि शेख तकी या किसी सूफी फकीरने उन्हें राम नामका गुरु मंत्र दिया होगा।

कबीरके वचनोंके आधार पर यह भी नहीं माना जा सकता कि कबीर इस्लामी अर्थमें एकेश्वरवादी थे। एकेश्वरवाद और अद्वैतवादमें बहुत अंतर है। एकेश्वरवादके अनुसार ईश्वर एक है, उसने सृष्टि बनायी, वह सबका स्वामी है, उसके समान कोई दूसरा नहीं है; पर सृष्टि उससे अलग है, फरिश्ते इंसान, जिन्न आदि 18हजार योनियाँ उससे अलग हैं। सबसे बड़ा अपराध है अल्लाहसे अपनेको अभिन्न बताना। इसी अपराधके कारण अनलहक (अहं ब्रह्मास्मि) कहनेके कारण ही मंसूर हल्लाजको प्राणदंड दिया गया था। उसके बाद 'बाशरा' सूफी अपनेको अल्लाहसे मिलनके प्रेमावेगमें भी कुछ भिन्न ही बताते रहे। अद्वैतवाद दो मानता ही नहीं, उसकी मान्यता है कि स्रष्टा ही सृष्टि बन गया है। अज्ञानके कारण ही नानात्वकी कल्पना होती है। सच्चा ज्ञान तो अद्वैतके, अभेदोंके अनुभवपर ही आधारित है। कबीरकी स्पष्ट घोषणा है : हम सब मांहि सकल हम मांही। हम थै और दूसरा नाहीं॥[8]

कबीर यही नहीं कहते, अद्वैतके और गहरे स्तरपर उतर कर कहते हैं: मैं वैं, वैं मैं, ये द्वै नाहीं। आ पैं अकल सकल घट मांही॥......आतमलीन अखंडित रामां। कहै कबीर हरि मांहि समांनां॥[9] जब मैं और तू, तू और मैं ये दो रह ही नहीं गये,जब समस्त घटोंमें (आकारोंमें) पूर्ण आत्मा ही विराजमान है, तब कबीर हरिमें समा गया, आत्मलीन, अखंडित राम हो गया। इसी स्तरपर कबीर कह उठे, कोई मुझे कबीर, कोई मुझे राम राई कहता है: कोई कहौ कबीर, कोई कहौ राम राई हो।[10] क्या कोई सूफी ऐसा कह सकता है? साफ है कि इन पंक्तियों में सूफी दर्शनकी नहीं, औपनिषदिक अद्वैतवादकी अनुगूँज है।

क्या सूफी प्रेम-साधनासे कबीरकी प्रेम साधना अतिशय प्रभावित है? इसका कोई ठोस प्रमाण अंडरहिल, डॉ. ताराचंद, अली सरदार जाफरी आदिने नहीं दिया है। पहली बात तो यह कि इन तीनोंने कबीरकी जिन रचनाओंको उद्धृत किया है वे कबीरकी प्रामाणिक रचना हैं कि नहीं इस पर विद्वानोंको बहुत संदेह है। आचार्य क्षितिमोहन सेन द्वारा संकलित एवं बांगलामें प्रकाशित कबीरके पद ऐसी पुस्तकों या मौखिक परंपरासे गृहीत हैं जिन्हें पुरवर्ती विद्वान प्रामाणिक नहीं मानते। इन्हींमें से सौ पद चुनकर रवीन्द्रनाथने उनका अंग्रेजी अनुवाद किया था। यही बात डॉ. ताराचंद एवं अली सरदार जाफरीके लिए भी कही जा सकती है कि उन्होंने कबीरकी जिन रचनाओंको स्वीकार किया है, वे पाठालोचनकी कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं। दूसरी बात यह कि अपनी स्थापनाओंके लिए वस्तुगत आधार प्रस्तुत करनेके स्थानपर इन विद्वानोंने अपनी मान्यताओंको वरीयता दी है, भले वे उपलब्ध साक्ष्योंके प्रतिकूल ही क्यों न हों। डॉ. ताराचंद और अली सरदार जाफरी दोनोंको यह लगा कि कबीरकी भाषामें सूफी शब्दावलीका अभाव-सा है। इसका सीधा अर्थ यह है कि वे सूफी विचारधारासे विशेष प्रभावित नहीं है, किन्तु दोनों विद्वानों ने यह लँगड़ा तर्क देकर अपने मनको समझा लिया कि कबीर विद्वान नहीं थे, अत:अरबी, फारसीकी शब्दावलीका वे प्रयोग नहीं कर सके। फिर जिस प्रकार प्रभाव और

---

6. डॉ. शुकदेव सिंह द्वारा संपादित कबीर बीजक, रमैनी 48.1 *7. वही, रमैनी 63 का दोहा*
8. कबीर ग्रंथावली, राग भैरूं, 8.1-2 *9. वही, राग आसावरी 2.2, 3,8,9* *10. वही, राग गौड़ी 50.3*

समताका प्रतिपादन किया गया है, वह भी अत्यंत असंतोषजनक है। प्रस्तुत है अली सरदार जाफरीकी विवेचनासे एक उद्धरण:

'इस्लाममें इंसानकी जिम्मेदारियोंको दो हिस्सोंमें बाँटा गया है। एक खुदाका हक, दूसरा बंदोंका हक। इबादत (उपासना) खुदा का हक है और सामाजिक जिम्मेदारियाँ बंदोंका हक। खुदाके गुनहगारको, जिसने हके-इबादत अदा नहीं किया, खुदा माफ कर सकता है। लेकिन बंदोंके गुनहगारको जिसने अपने सगे-संबंधियों, पड़ोसियों, देशवासियों या इस संसारमें रहने वाले दूसरे इंसानोंका हक अदा नहीं किया, उसको खुदा माफ नहीं करता। सिर्फ बंदे ही उसे माफ़ कर सकते हैं, उसके बाद रहमतके दरवाजे खुलेंगे। इसलिए कबीरने दोनों हकोंका जिक्र किया है: सरगुनकी सेवा करो, निरगुनका करो ज्ञान। निरगुनं सरगुनके परे, तहीं हमारा ध्यान॥'[11]

मैं सचमुच नहीं समझ पा रहा कि ऊपरके मंतव्यसे इस दोहेका क्या संबंध है? सगुण और निर्गुण परमात्माके दो रूप हैं; कबीर कह रहे हैं उनके सगुण रूपकी सेवा करो, निर्गुणका ज्ञान प्राप्त करो। जो तत्त्व निर्गुण और सगुण दोनोंके परे है, कबीरका ध्यान उसीपर केन्द्रित है। इस दोहेमें बंदोंका हक अदा करनेकी बात कहाँ है, मुझे नहीं मालूम।

इसी तरह सरदार जाफरीका यह कहना कि कबीरदास एक मुसलमान सूफी थे जो हिन्दू भक्तिकी भाषामें बात कर रहे थे,[12] बड़ा अटपटा लगता है। कबीर सूफी थे तो वे सूफी शब्दावलीका प्रयोग क्यों नहीं करते थे। ऐसा तो नहीं है कि उनकी रचनाओंमें अरबी फारसीके शब्द न हों। स्वयं सरदार जाफरीने लिखा है, 'क़बीरकी कवितामें अरबी और फारसीके सैकड़ों शब्द हैं, जिनमें से कुछ तो उस समय ही हिन्दीमें प्रचलित हो चुके थे और कुछ सीधे सूफी शायरीसे आये हैं।'[13] मेरा निवेदन है कि सीधे सूफी शायरीसे आये शब्दोंके आधार पर कबीरकी बानीका विश्लेषण करनेका कष्ट डॉ. ताराचंद और सरदार जाफरी क्यों नहीं करते? क्यों वे यह तर्क देते हैं कि 'अगर उनकी काव्य रचनामें सूफ़ियोंकी शब्दावलीसे ज्यादा समानता नहीं पाई जाती तो उसकी वजह यह नहीं कि कबीर उन विचारोंसे कम परिचित थे, बल्कि इसकी वजह यह है कि वह विद्वान नहीं थे। इसलिए जब उन्होंने इन विचारोंको अपनाया तो फारसी शेरोंको पूरी तरह अपने मस्तिष्कमें सुरक्षित न रख सके'[14] क्या यह निष्कर्ष निकालना अधिक संगत नहीं होगा कि कबीर जिस भक्तिकी भाषामें बात कर रहे थे, वही उनकी असली पहचानका संकेत करती है? कबीर किसीको खुश करनेके लिए नहीं, अपनी सहज आस्थाको व्यक्त करनेके लिए बोलते थे। नाभा दासने उनके लिए सटीक बात कही है: मुख देखी नाहिंन भनी![15]

सीधी बात यह है कि कबीर यदि सूफी साधना से अतिशय प्रभावित होते तो सूफी विचारकों और कवियोंकी परंपरासे अपनेको उसी तरह जोड़ते, जिस तरहसे उन्होंने अपनेको एक तरफ सनक, सनंदन, जैदेव, नामदेव, नारद, शुकदेव, गोपी आदि और दूसरी तरफ गोरख, भरथरी, गोपीचंदसे जोड़ा है। उनके पूरे साहित्यमें कहीं रूमी, जामी, हाफिज, राबिया आदिका उल्लेख नहीं है। अपने समकालीन सूफी संतोंका उन्होंने जिस प्रकार उल्लेख किया है, उससे तो बिलकुल नहीं लगता कि वे सूफी थे: मानिकपुर कबीर बसेरी। मुद्दति सुनी सेख तकी केरी॥ अजो सुनी जमनपुर थाना। झूठी सुनी पीरन को नामा॥ एक इस पीर लिखे तेहि ठामा। खतमा पढ़े पैगंबर नामा॥ सुनत बोल मोहि रहा न जाई। देखि मुकर्बा रहा भुलाई॥ हबीब औ नबी के कामा। जहँ लग अमल सो सबै हरामा॥... सेख अकरदी सेख सकरदी, मानहु वचन हमार। आदि अंत औ जुग जुग, देखहु दृष्टि पसार॥[16]

(सावशेष)

---

11. कबीरकी बानी, पृ. 15 — *12. वही, पृ. 16* — *13. वही, पृ० 20*

14. वही, पृ. 28 — *15. भक्तमाल, छप्पय सं. 516* — *16. कबीर बीजक, रमैनी 48*

विश्व शान्तिकी खोज

स्वामी रामदासजी महाराज

अनुवादक : **डॉ० विश्वामित्र**

संसारमें शान्ति हो, इसके लिए लोग उपाय व साधन ढूँढनेमें व्यस्त हैं। अनेक सम्मेलन होते हैं, उनमें सन्धियाँ होती हैं, विचार-विमर्श होते हैं, वचन-पत्र तैयार होते हैं, परन्तु स्थिति तो अभी भी लगभग वैसी ही है। तब इस महान समस्याका जिसका हम सामना कर रहे हैं, क्या समाधान है? प्रत्येक व्यक्ति इसकी खोजमें लगा है, परन्तु हल तो नहीं मिला। हम निराश तथा अधीर हो रहे हैं, भयभीत भी हैं। हमें समझ नहीं आती कि विश्वमें शान्ति एवं सद्भावना लानेके लिए हम क्या करें?

संसारमें लड़ाई, झगड़ों, मतभेद, युद्धोंका कोई उच्च उद्देश्य नहीं है, मात्र क्षणभंगुर सत्ता, धन तथा यश-मानकी प्राप्ति है। भौतिक उपलब्धियाँ तो सागरमें बुलबलोंकी भान्ति प्रकट तथा लोप हो जाती हैं। हम उन्हें पकड़नेके लिए भरसक प्रयत्न करते हैं, एक क्षणके लिए लगता भी है पकड़में आ गये, किन्तु अगले ही क्षण नष्ट हो जाते हैं, खाली हाथ रह जाते हैं। शान्ति हमारी खोज है। यह हमारी आत्माकी भूख है परन्तु यह शान्ति हमें तभी मिल सकती है जब हम अपने आपको उस सर्वत्र व्याप्त परम सत्य अर्थात् विश्वात्मासे संयुक्त करेंगे। हम तो दूसरोंको दबाने, उन्हें नीचा दिखानेके लिए लड़ रहे हैं और सोचते हैं ऐसा करनेसे हमें सुख-शान्ति मिलेगी। इतिहास साक्षी है कि युग-युगान्तरसे विश्व-शासन हेतु, संसारमें शान्ति तथा सामंजस्य स्थापित करनेके प्रत्यक्ष उद्देश्यसे लड़ाईयाँ और युद्ध हुए हैं। विडंबना है कि लोग शान्तिके नाम पर लड़ाईयाँ करते हैं। वास्तविक शान्ति तो अन्तर्मुखी होने तथा उस महानतम यथार्थ—परमेश्वर प्राप्ति होनेसे ही मिल सकेगी। खोज भीतरकी ओर मुड़े। परन्तु आजके राजनीतिज्ञ तो ऊपरी मतभेदोंकी कच्ची मरम्मत करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसे साधनोंसे उन्हें स्थायी सफलता नहीं मिल सकती, अतः स्वभावतया दंगे-फसाद बार-बार होते रहेंगे। सभी शान्तिकी चर्चा तो करते हैं, परन्तु तैयारी तो युद्धकी करते हैं। यदि हम अपने भीतर परम सत्यको पा लेते हैं, तो हमें बोध होता है कि संसारमें सुख-शान्तिकी चर्चा, सम्मेलनों, समागमों तथा संन्धियों द्वारा ऊपरी मतभेदको मिटानेके लिए प्रयास हमारी अज्ञानताकी गहनता ही दर्शाते हैं। हम एक दूसरेको विश्वास दिलानेके लिए नये-नये सूत्र अविष्कार करते हैं, किन्तु दृढ़ विश्वासके बिना, जिसका परिणाम होता है—असफलता, सब ओर भ्रान्ति तथा संसारमें दुर्भाग्य-दुर्दशा। इस अगम्यताका एक ही अचूक समाधान है—प्रत्येक प्राणी उस महान सत्यकी अनुभूति करे जो समग्र ब्रह्माण्डमें निहित है और इससे उस बेचैन धरती पर वास्तविक सामंजस्य व सद्भावना स्थापित करे। शान्ति हमारे भीतर है, आत्मामें है, जिसके लिए उपनिषद् घोषित करते हैं—शान्ति समृद्धं अमृतं—वह शान्तिसे परिपूर्ण है तथा शाश्वत है।

अतएव हमें अपने-अपने हृदयमें ईश्वरानुभूतिके लिए दृढ़-संकल्प होना चाहिए तथा उसकी महिमाका सर्वत्र विस्तार करने हेतु उन सब लोगों पर जो हमारे सम्पर्कमें आते हैं, वह प्रकाश बिखेरना चाहिए जो हमें उपलब्ध हुआ है। इससे हम अपने भीतर तथा अपने इर्दगिर्द वास्तविक शान्त वातावरणकी सृष्टि कर सकेंगे, जो हमारे ऊपर छाये युद्धके बादलोंको तितर-बितर कर देगा। इस महान सत्कार्यकी तैयारीके लिए हमें अपने-अपने हृदयको वैर-विरोध, घृणासे रहित करना होगा, ताकि दिव्य-प्रकाश हमारे भीतर चमके और दिव्य-प्रेमकी तरंगें उठें तथा विश्व भरमें फैल जायें। यह प्रेम शान्तिकी धाराको एक हृदयसे दूसरे हृदयमें संचारित

होने योग्य तथा समूचे संसारमें शान्त-वातावरण विस्तृत करने योग्य बना देगा जिससे कलह, लड़ाईयाँ तथा युद्धोंको होना असम्भव हो जायेगा।

कुछ ऐसा तर्क-वितर्क बेशक करें कि युद्ध-मनोवृत्ति तो कुछ एक राजनीतिज्ञों या थोड़ेसे लोगों जैसे साम्राज्यवादी या युद्ध-प्रिय जनोंकी ही उत्पत्ति है, सामान्य जनता तो युद्धके सत्यत: न ही हकमें है और न ही इसके लिए उत्तरदायी है। परन्तु यह सत्य नहीं है। हममें-से प्रत्येक युद्धकी विचार-धाराके लिए जिम्मेदार हैं। जब तक हमारे हृदयमें घृणा, वैर-विरोध और क्रोध रहते हैं, हम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ढंगसे युद्ध-मनोवृत्तिकी उत्पत्तिमें सहायता करते हैं। हम अपने अपने संसदोंमें ऐसे प्रतिनिधि चुननेके लिए उत्तरदायी हैं, जो युद्धमें विश्वास रखते हैं तथा अपने नेताओंको युद्ध समयमें सहयोग देनेके लिए तत्पर रहते हैं। यदि हम अपने मनको, भीतर आसीन भगवान् पर ध्यान द्वारा निश्चल एवं शान्त रखते हैं तथा परस्पर प्रेम करना सीख लेते हैं तो यह लोग जो युद्ध जारी रखनेको अब तत्पर हैं, इनके मनसे भी वैर-विरोध तथा युद्धके विचार पूर्णतया निर्मूल हो जायेंगे। अत: हमें वैयक्तिक और संयुक्त तौर पर शान्त-वातावरण उत्पन्न करनेका प्रयत्न करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्तिको अपने सामर्थ्य-अनुसार, संसारमें शान्ति व सामंजस्य उत्पन्न करनेके लिए यथासम्भव जो कुछ वह कर सकता है, करना चाहिए, क्योंकि एक-एकसे ही अनेक बनते हैं। अतएव युद्ध तथा शान्ति दोनोंका दायित्व हम सभीके कन्धों पर है। हम किसी अन्यको आरोपित नहीं कर सकते। हमारे सिवा दूसरा कोई दोषी नहीं। हम अब संसारमें शीत युद्ध होता देखते हैं। इससे शान्तिप्रेमी लोग भी प्रभावित हो रहे हैं। अत: हमें सर्वप्रथम व्यक्तिगत, फिर संयुक्त प्रयास भी करना चाहिए ताकि युद्ध-वृत्ति दब जाये और धरती पर प्रेम व सद्भावनाका संचार एवं विस्तार हो।

हमारे भीतर एक और कमजोरी है जो युद्ध-मनोवृत्तिको जन्म देती है। यह है भय-वृत्ति। हम भयके शिकार हो गये हैं—भयसे भयभीत। मृत्यु-भय हमें आतंकित करता है। यह इसलिए क्योंकि हम अपने आपको मात्र भौतिक देह ही मानते हैं जिसका जन्म, विकास, विनाश (क्षय) एवं मरण होता है। इस भयको दूर करनेके लिए हमें यह अनुभूति करनी है कि हम अजर हैं, अमर हैं, देहके विनाशसे हमारा विनाश नहीं होता। जब हमारे हृदयसे भय भागेगा, तभी हम शान्त रहेंगे। अन्यथा दूसरों पर अविश्वास होगा, उनसे घृणा होगी। भय हमारे मनकी अशान्तिका कारण है, हमें बेचैन बनाता है। इसीके कारण हम दुर्घटनाओं, विपत्तियों तथा अनर्थोंको निमन्त्रित करते हैं। हमारा देह-भाव (देहाभिमान), भय द्वारा इतना दृढ़ हो चुका है कि मनको देहसे हटाकर, उसे भीतर परमात्मा पर एकाग्र तथा स्थिर करना अति दुष्कर है। हमें इस बोध द्वारा कि देहके मरणसे हम नहीं मरते—भयका त्याग करना है। अतएव हमें यह अनुभूति करनी है कि शरीर नश्वर है, आत्मा नहीं। वह जिसने ईश्वरसे सत्यत: अपने आपको एकस्वर कर लिया है, मौतसे बिल्कुल भयभीत नहीं होता। अत: यह हम सबका कर्तव्य बनता है कि हम मृत्युके भयराजसे मुक्त हों। इस भयका संसारकी वर्तमान अशान्त अवस्थामें बहुत भारी योगदान है। चूँकि भय और घृणा दोनों साथ-साथ ही रहते हैं, अत: भय बिलकुल ऐसे जैसे अग्निमें लकड़ी अर्थात् ईन्धन डालना। जहाँ घृणा-द्वेष है, वहाँ भय भी होता है और जहाँ भय है वहाँ वैर-द्वेष भी होते हैं। दोनों विभिन्नता एवं पृथक्त्व-भाव जन्य हैं।

यदि हम प्रेमके विषयमें चर्चा करते हैं, तो सर्वप्रथम इसे हमें अपने जीवनमें उतारना चाहिए, पहले हमें स्वयं उसका अभ्यास करना चाहिए। यदि परमेश्वरने हमें दूसरोंसे प्रेम करनेका उतना ही सामर्थ्य प्रदान किया है कि जितना हमें अपने आपसे, तो हमें इस बलको उभारना चाहिए। जब तक हम सर्वत्र राम-दर्शन नहीं करते तथा सबको आत्म-स्वरूप नहीं देख सकते,

तबतक हमें प्रेम-चर्चाका कोई अधिकार नहीं। हमारा प्रेम ऐसा होना चाहिए कि जो भी हमारे सम्पर्कमें आयें, उनमें प्रेमका संचरण हो। उपदेश या प्रचार सदा आवश्यक नहीं और न ही सफल होता है। इससे श्रेष्ठतर तथा सुनिश्चित ढंग है जिस द्वारा हम दूसरोंके साथ सम्बन्ध खोज उनसे वार्तालाप कर सकते हैं, वह है आत्मिक-सम्बन्ध। यदि हम इस विश्व-प्रेमका व्यक्तिसे व्यक्ति, एक देशसे दूसरे देश तथा एक राज्यसे दूसरेमें संचार करते हैं तो हम उसकी सृष्टि करने योग्य होंगे जिसे विश्व-भ्रातृत्व कहा जाता है। ऐसा होना अनिवार्य है—तभी युद्धकी लहरका डटके सामना किया जा सकेगा।

अतः प्रत्येक व्यक्तिको पहले अपने भीतर शान्तिको प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिए। तत्पश्चात् ऐसे आप्तजन विश्वके विभिन्न भागोंसे संयुक्त होकर शान्तिके संदेशको फैलाकर; शान्ति लानेकी चेष्टा करें। बेशक समस्त मानव जाति न जुड़े, पर कुछ प्रतिशत तो उसमें भाग लें। इससे दूसरोंका, जो इस समय आन्दोलनके समर्थक नहीं, धीरे-धीरे रूपान्तरण होगा। व्यक्तिका स्वभाव वैसा ही विकसित होता है जैसा जिनकी संगतिमें वह रहता है। यदि हम ईश्वरके प्रति सच्चे हैं तथा हम सभीसे एक-सा प्रेम करते हैं, तो हमारे सान्निध्यसे, हमारी संगतसे उन्हें भी वैसी ही प्रेरणा मिलेगी। इस प्रकार हम विश्व-शान्ति एवं प्रेमकी धाराका शुभारम्भ कर सकेंगे, जो युद्ध-संघर्ष तथा भेद-भाव, मतभेदकी विरोधी शक्तियोंको धीरे-धीरे निष्प्रभाव कर देगी।

वे जो आन्दोलनमें संयोजित हैं, उन्हें सर्वोपरि याद रखना है कि शान्ति तब तक स्थापित नहीं की जा सकती जब तक मानवता, अहंकार, लोभ, क्रोध-घृणाके चंगुलसे मुक्त नहीं हो जाती—यही तो हैं कारण अन्तर्राष्ट्रीय संग्रामके, चाहे वह आर्थिक है या राजनैनिक। मात्र नकारात्मक साधनोंसे इन संग्रामों—संघर्षोंके पिशाचका मुकाबला करनेकी अपेक्षा सकारात्मक साधनोंको अपनाएँ। उन रचनात्मक मार्गोंको गतिशील करनेकी आवश्यकता है जो उल्लेखनीय व्यक्तियों द्वारा, उच्च आध्यात्मिक उपलब्धियों व आत्मिक शक्तियोंसे व्यापक सामंजस्य व सद्भावनाका वातावरण उत्पन्न कर सकें जिसमें युद्ध असम्भव हो। भारतकी महानता उसके, विश्वको मानव जातिके उद्धार-पुनर्जननके लिए आध्यात्मिकताके अद्वितीय योगदानमें है। अपनी वर्तमान दरिद्री अवस्थामें भी उसने आत्मा-परमात्माकी भव्यताकी अनुभूतिकी उपेक्षा नहीं की। यह भारतीय आध्यात्मिक परम्परा है जो उसे पुरातन संतों-महात्माओंसे हाथ लगी है। यह संस्कृति सदा आत्मिक पूँजीके पक्षमें रही है, न कि केवल भौतिक सम्पत्ति सत्ता व यश-मानके। उस युगमें भौतिक एवं आत्मिक स्तरोंके समन्वयकी आवश्यकता है, जिससे सब ओर दिव्य-प्रकटकी उत्पत्ति हो। केवल राजनैतिक आदर्श, जो आत्माके स्थिर आधार पर आधारित नहीं, जीवनकी समस्याओंको सुलझानेमें निरर्थक हैं।

★

हाथ-पर-हाथ धरकर बैठ जाना न जिज्ञासुका लक्षण है, न भक्तका। उसे तो— 'हस्तैर्हस्तान् समापीड्य दन्तैर्दन्तान् विचूर्ण्य च।' हाथ-से-हाथ मसल कर, दाँतोंसे दाँत पीसकर अर्थात् पूरे प्रयत्नसे—प्राणपणसे लगना चाहिए। देखो भाई, हम शांकर-सम्प्रदायके तो संन्यासी हैं और वहाँ तो 'ऋते ज्ञानान्मुक्तिः' 'ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति' 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' वहाँ कर्मका क्या अर्थ होता है? परन्तु, नारायण! हमारा यह अनुभव है कि जो मैल लगा है वह कर्मके बिना छूटेगा नहीं, जिस लोटेमें पानी पीना है— जबतक उसको और पानी, और माटीसे माँजेंगे नहीं, तबतक वह साफ नहीं होगा!! और, प्यास भी नहीं बुझेगी।

—अ० स०

आइये! कृष्णके पास चलें

(डॉ० धर्मशीला भुवालकाकी गीता-कक्षासे)

संकलनकर्त्री : श्रीमती उषा जालान

(पूर्वानुवृत्त, फरवरी 2005)

कृष्ण तो दावेके साथ कहते हैं कि मेरे युद्धक्षेत्रमें उतरनेसे पहले तक जो कर्म तुमको बाँधते थे वही कर्म अब तुम्हें मुक्त करने लगेंगे; क्योंकि अब मैं तुम्हारा सारथी बनकर आ गया हूँ।

हमारे मनमें जब कामना, वासना, अहङ्कार आदि कुछ भी नहीं रहता तब हम सबकुछ पा लेते हैं। सबकुछ माने जो सर्वज्ञ है, सर्वत्र है, मित्र है, देनेकी सामर्थ्य रखता है-वह; उसे पा लेनेके बाद हमारे लिए कर्म करनेकी बाध्यता नहीं रहती। हम ईश्वरके कार्यके निमित्त बन जाते हैं। यह एक बहुत बड़ी बात है—इसे शरणागति कह लें, चाहे ब्रह्मज्ञान कहें। अनुचिंतन अनुस्मरण होने लगने पर सारी उपाधियाँ समाप्त। हम निरुपाधिक सत्तामें बैठ जाते हैं। इसका अर्थ है समाधिस्थ होना और समाधिमें बैठकर काम करना। इस प्रकार कर्म दिव्य हो जाते हैं।

मरणासन्न व्यक्तिके कानमें मन्त्र बोलनेकी तरह कह रहे हैं कृष्ण-ॐ-इस एक अक्षररूप ब्रह्मका उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मुझ निर्गुण ब्रह्मका चिंतन करता हुआ शरीरको त्याग कर जाता है, वह परमगतिको प्राप्त करता है

ओम्‌में अ उ म-स्वप्न, जागृति, सुषुप्ति तो हैं, किन्तु चौथी जो तुरीयावस्था है वह कृष्णके स्मरणमें है। अर्जुनसे कृष्ण यही कह रहे हैं कि—युद्धमें आनेसे पहले सब प्रकारके त्रैतको छोड़कर, तुरीयावस्थामें चले जाना। तुरीयावस्थामें आनेसे पहले अन्तःकरण चतुष्ट्यका बाध करना पड़ता है नहीं तो उनकी खुराफात चलती रहती है, कोई न कोई संस्कार जागता रहता है। ओम्‌का उच्चारण करते-करते भी मनमें रजोगुण आ जाता है। तुरीयावस्थामें जब तक हम पहुँच नहीं जाते तब तक कृष्ण स्वयंको हमारे सामने प्रगट नहीं करते।

ओम् नादब्रह्म है। सब जप ओम्‌में ही लीन होते हैं। ओम् आत्माकी औषधि है। ओम्‌का उच्चारण करनेके लिए भी कहा और उसका अनुस्मरण करनेके लिए भी-अर्थात् इसका उच्चारण रूखा नहीं भावपूर्ण हो। हमारे अन्तःकरणमें जो आत्मा है, जो हमारा इष्ट है; उसके साथ जुड़कर ओम्‌का उच्चारण होना चाहिए।

तुरीयावस्थामें पहुँचकर जब केवल यही ज्ञान शेष रहेगा कि हमारी स्थिति तुरीयावस्थामें है, और जब इसी ज्ञानके वाहनपर प्राण प्रयाण करेंगे तब दुबारा जन्म नहीं लेना पड़ेगा।

जैसे कि पाताञ्जल योगदर्शनमें कहा गया है—

तज्जपः तदर्थभावनं अर्थात् कृष्ण नामका उच्चारण करते ही मनमें भाव आये कि हम निवृत्ति और प्रवृत्ति दोनोंको एक साथ लेकर चलनेवाले कृष्णके नामका जप कर रहे हैं। इससे कृष्णकी भगवत्ता या उसे हम अपनी ही भगवत्ता कह लें—साथ-साथ चलती रहती है इसमें भावपूर्ण उच्चारण होता है, उसमें यान्त्रिकता नहीं रहती।

कृष्णके साथ अर्जुनके कई सम्बन्ध हैं। वे भाई-भाई भी हैं, गुरु-शिष्य भी हैं, कृष्ण-अर्जुनके कर्मोंके संचालक भी हैं। यों तो कृष्ण सबकी भक्तिके आलम्बन और उनके ज्ञानके आधार भी हैं; परन्तु दैनिक जीवनमें उनका कर्मोंका संचालक होना सर्वाधिक आवश्यक रूप है कि जिसके सहारे हम अपने स्वधर्मका सुचारू रूपस निर्वाह कर सकें।

सम्पूर्ण गीता मनके निर्माणकी कहानी है।

परमगतिका अर्थ एक ऐसे बोधका हो जाना है कि जो छूटनेवाला है, वह छूटेगा ही और जो रहनेवाला है वह रहेगा ही। यह बात जीवनमें आ जाय तो पुनर्जन्मकी विवशता न रहे।

अनन्यचेता: कहकर कृष्णने अधिकार भेदको हटा दिया। कह दिया—अनन्यचित्त वाला जो कोई भी। इस प्रकार अधिकार भेदको केवल गीताने ही हटाया है। अन्य ग्रन्थोंमें तो उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान, विवेक, वैराग्य इस षट्सम्पत्तिको पाये बिना भगवान् किसीको मिल ही नहीं सकते ऐसा उल्लेख है।

चित्त है संस्कारोंकी मञ्जूषा-तो अनन्यचेता वह है जो अच्छे-बुरे सब संस्कारोंके रहते हुए भगवान्से प्रेम करता है। इसके लिए बहुत तीव्र पिपासा होनी चाहिए, फिर उस व्यक्तिको अपने भगवान्के अलावा और कुछ सूझता ही नहीं। उसे ही अनन्यचेता कहते हैं जो इस तरह भगवान्के साथ मिलकर एक हो जाता है।

मनुष्यका अन्तर्बन्धन हुआ उसका 'मैं' कहना, और उसका बाह्यबंधन हुआ उसका 'मेरा' कहना। ओम्का उच्चारण करते ही 'मैं' टिक नहीं सकता और जैसे ही भगवान्का अनुस्मरण या लीला चिंतन किया कि 'मेरे' का बन्धन भी छूटा। इस प्रकार अन्तर्बन्ध और बहिर्बन्ध दोनोंको समाप्त करके योगी जीवन्मुक्तिकी अवस्थामें चला जाता है।

चित्तपर लगी सभी लकीरोंको मीटा देनेके बाद जो बचा रहता है वही है अधिष्ठान।

बिन्दुका जैसे अपना कोई आयाम नहीं होता और जिसपर वह बना रहता है उसी आधारके कारण दिखायी देता है—वैसे ही आधार हैं हमारे अन्दर बैठे कृष्ण भी। अधिष्ठान (कृष्ण) सत्य है इसलिए संसार भी सत्य दिखता है। बिन्दुओंको, रेखाओंको मिटाते चलें तो वहीं एक आधार-केवल कृष्ण ही रहेंगे जो सदा-सदा हमारे ही साथ हैं। सब कहीं कृष्णकी ही स्थापना कर लें तो जीवन बिंदुके धरातलका नहीं आधारके धरातलका हो। बिन्दुओं व रेखाओंसे आच्छादित नहीं, ऐसा एक स्वच्छ पवित्र जीवन जियें कि अन्तमें अर्जुनकी तरह हमारा भी मोहनाश हो जाय।

शिवलिंग पर जैसे निरन्तर जल-दुग्धका अभिषेक होता रहता है; उसी तरह साँस-साँसमें कृष्णसे जुड़ना है हमें। नित्य सतत जुड़े ही रहना है। ऐसा तभी सम्भव हो सकता है कि हमें जब जो मिले वह हमारे लिए पहले कृष्ण हो फिर कोई और।

गीताके इस अध्यायमें जो मृत्युकी गरिमा, मृत्युकी सुषमा, मृत्युकी महिमा बतायी गयी है उसका थोड़ा चिन्तन करें। गीता ज्ञानका ग्रन्थ है और मोहनाश उसका प्रतिपाद्य विषय है। इसमें मृत्युकी चर्चाका होना कुछ अप्रासङ्गिक-सा लगता तो है, परन्तु वास्तविकता यह है कि जीनेकी कला तो बादमें भी बतायी जा सकती है परन्तु सम्प्रति प्रसङ्ग युद्धका है। युद्धमें अर्जुनका मृत्युसे साक्षात्कार होनेकी सम्भावना है; अत: पहले उसे कृष्ण यह समझा देना चाहते हैं कि उनसे भिन्न नहीं है मृत्यु। यह बात समझमें आ जाय मित्रको; तो मृत्युको वह सहर्ष स्वीकार कर सके, इसी दृष्टिसे कृष्णने यहाँ यह चर्चा आरम्भ की।

हममें सामर्थ्य है कि अपनी आत्माको देख सकें, परमात्मासे मिल सकें। हमारा अन्त:करण भक्त और भगवान्का लीलाक्षेत्र बन सकता है। महारास हो सकता है हमारे अन्त:करणमें—पर यह तभी सम्भव है जब हम अपनी शक्तिको भलीभाँति समझ लें।

हमें ऐसी जगह खड़े होना है जहाँसे कैसा भी प्रबल प्रवाह हमें हिला न सके। ऐसे स्थान केवल दो ही हैं—एक हमारी अपनी स्थित प्रज्ञता और दूसरे भगवान्के चरण।

सारी लंका जल गयी तब भी विभीषणका घर नहीं जला; क्योंकि वह प्रतिदिन निरंतर रामजीका स्मरण किया करता था। इसीलिए रामजी उसे मिल भी गये, उसके लिए सुलभ हो गये।

(सावशेष)

अष्टावक्र गीता

स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

संकलनकर्त्री : सुश्री डॉ. लीना ग्रोवर

(पूर्वानुवृत्त, फरवरी 2005)

देखो! अब दूसरी तरहसे देखो! पहले तो तुम एक हो। एक हो माने तुम्हारे बिना दो है ही नहीं। एकका मतलब यह है। एक माने गिनतीमें आप लोग जानते हैं न? एक माने वह गिनती, जिसके बिना दो नहीं हो सकता है। एक+एक=दो। यदि एक ही नहीं होगा, तो दो कहाँसे होगा? एक माने जिसके बिना दो की-तीनकी-चारकी-किसी भी गिनतीकी सिद्धि नहीं हो सकती है। एति। अन्वेति। द्वितीयादिषु। द्वित्रादिषु। दो-तीनमें जो रहता है। जिसके बिना दो-तीन हो ही नहीं सकता है; उसका नाम है—एक। पहली बात तो यह है कि तुम एक हो। यह तो सबके, माने छोटी अकलवालेकी भी समझमें यह बात आवेगी कि जिसके बिना दो-तीन-चार-पाँच-सौ-हजार-लाख-करोड़-कुछ हो ही नहीं सकता है, उसका नाम होता है—एक। तो, पहली बात तो यह है कि तुम एक हो। मेरे प्यारे! तुम दुनियामें एक हो। तुम्हारे जैसा कोई है ही नहीं। लासानी हो तुम। अनुपम हो तुम। तुम्हारे जैसा कोई और है ही नहीं। तुम्हारे बिना और कोई है ही नहीं। मर जायेंगे सब, अगर तुम नहीं होवोगे। वह एक तुम हो। अब प्रश्न यह हुआ कि तुम जड़ हो क्या? मान लिया कि मैं एक हूँ; लेकिन, मैं जड़ हूँ क्या? तो, अनेकताके काटनेके लिए एक और जड़ताको काटनेके लिए द्रष्टा। तुम जड़ नहीं हो। तुम चेतन हो। तुम अन्धे नहीं हो। तुम आँखवाले हो। तुम एक हो और देख रहे हो। भाई! कोई दूसरा होवे, तो? कोई दूसरा एक होवे, वह जड़ होवे? सन्मात्र होवे? बोले—नहीं। वह सन्मात्र नहीं है। द्रष्टा है। चिन्मात्र है। अच्छा! तो कोई दूसरा होवे? कहा—दूसरा नहीं। असि। असि माने तुम हो। असि क्रियापद जो है न, वह कर्त्ताको त्वम् बनाता है। क्रियापद जो है, वह कर्त्ताका आक्षेप करता है। तुम।

अब देखो! एक है। एक है माने उसके बिना न दो है, न तीन है, न चार है। आहा! एक माने करोड़का बाप। लाखका बाप। हजारका बाप। सौका बाप। दसका बाप। तीन-दोका बाप। वह एक। बोले—एक जड़? कहा—नहीं! चेतन द्रष्टा। कोई और? नहीं! तुम। असि। तीन बात कही गयी हो! एक द्रष्टा असि। अच्छा! थोड़ेके द्रष्टा? बोले—नहीं। सर्वस्य द्रष्टा। सबके द्रष्टा। अब बतावें? सब माने क्या? कहाँ? कीड़ासे लेकर ईश्वर तक और एक तृणसे लेकर प्रकृति तक—सबके तुम द्रष्टा हो। बदलनेवालेका नाम सर्व है हो। सरति। जैसे सड़क बहती है न? कितनी मोटर। कितने ताँगा। कितने रिक्शे। कितने आदमी। कितने पशु-पक्षी। यह सरकनेवाली दुनिया है। इसके तुम द्रष्टा हो। अच्छा भाई! जब जगते होंगे, तब द्रष्टा होंगे और जब सोते होंगे, तब द्रष्टा नहीं होंगे। विक्षेपमें द्रष्टा होंगे, समाधिमें द्रष्टा नहीं होंगे। समाधिमें द्रष्टा होंगे, विक्षेपमें द्रष्टा नहीं होंगे। सृष्टिमें द्रष्टा होंगे, प्रलयमें द्रष्टा नहीं होंगे। बोले—सर्वदा। है न? इसको आक्षेपिकी संगति बोलते हैं। संस्कृत-भाषामें अर्थ लगानेकी प्रणाली यह है कि एक अक्षर भी व्यर्थ नहीं होना चाहिए। यदि हमारी बोलीमें-से कोई आधा अक्षर कमकर सके कि यह बोलनेकी कोई जरूरत नहीं है, तो हमको कितना सुख मिलेगा? बोले—जैसे हमारे घरमें बेटा पैदा हो गया हो। अर्धमात्रा लाघवेन पुत्रोत्तमम मन्यन्ते वैयाकरणाः आहा! हम जो एक-एक शब्द बोलते हैं, उसमें-से एक मात्रा भी व्यर्थ नहीं होती है।

आपको सुनाया कि एकोका क्या मतलब है? क्या प्रयोजन है? द्रष्टाका क्या प्रयोजन है? असिका क्या प्रयोजन है? सर्वस्यका क्या प्रयोजन है? सर्वदाका क्या प्रयोजन है?

अब देखो! फलितार्थ सुनाते हैं। गुरुके पास अड़तालीस (48)बरस पढ़ना पड़ता है। अड़तालीस बरस हो! जब अड़तालीस बरस गुरुके पास पढ़ो, तब संस्कृतभाषाकी शैली मालूम पड़े कि यह कैसे बोलते हैं? इसीसे, खुद पढ़नेकी कोशिश न करके दूसरे पढ़े हुएसे उसको जानना पड़ता है। अयमेव हि ते बन्धो द्रष्टारं पश्यतीतरम्। तुम्हारा बन्धन क्या है? शास्त्रमें ऐसे बताया कि ब्राह्मण हो और एक वर्ष सेवा करे, तो एक बरसमें पता लग जायेगा कि उसमें कितना काम है—क्रोध है—लोभ है—मोह है? उसका एक बरसमें पता लग जायेगा। ब्राह्मण एक बरससे ज्यादा छिपा नहीं सकता है। यदि क्षत्रिय हो, तो दो बरस-छिपा सकता है। ऐसे धर्मशास्त्रमें लिखा है। क्षत्रिय अपने दिलकी बात छिपावेगा। क्रोध आवेगा, तब भी वह छिपावेगा। काम आवेगा, तब भी वह छिपावेगा। लोभ आवेगा, तब भी छिपा देगा। यदि वैश्य हो, तो तीन बरस छिपा सकता है भला! हाँ! बनिया सबसे ज्यादा कपटी होता है; क्योंकि, उसको बचपनसे ही अपने व्यापारकी बात छिपानेका अभ्यास होता है। उसके माँ-बाप सब छिपाते ही तो रहते हैं। तो, कोई असली मन्त्र बताना हो, तो ब्राह्मणको तो एक वर्षमें बता दे। क्षत्रियको दो वर्षोंमें बता दे और वैश्यको तीन बरसमें बता दे। धर्मशास्त्रमें यह विधान है हो! हम धर्मशास्त्रकी (Authority) ओथोरिटी हैं भला!

भाई मेरे! बिना सेवाके विद्या सफल नहीं होती है। असूयकाय अनृजवे। शिष्य दोषदर्शी न हो; सरलचित्त हो; अनुगत हो; तब उसको बताना चाहिए।

विद्या ह वै ब्राह्मण मा जगामह गोपाय मा सेवाधिस्तैहमस्मि।

यह ऋग्वेदका मन्त्र है।

विद्या ब्राह्मणके पास आयी और बोली—ब्राह्मण देवता! देखो! मैं तुम्हारा खजाना हूँ। मेरी रक्षा करना। मुझे छिपाकर गुप्त रखना। अनुनय-विनय किया। जो दोषदर्शी हो, उसको मत्र बताना। जो सरलचित्त न हो, उसको मत बताना। जो अनुगत न हो, उसको मत बताना। आज तो समय ऐसा आ गया न कि हमारे बड़े भाई आप लोगोंके जैसा बता गये हैं; उसके आगेकी बात आपको न बतावें, तो समझमें ही नहीं आती है। बोले—अरे! यह तो छोटी-मोटी बात बता रहे हैं। खेल-खिलौनेकी बात बता रहे हैं।

आपका बन्धन क्या है? अयमेव हि ते बन्धः। बन्धन हो! जैसे—रस्सीसे बाँधते हैं न! जंजीरसे बाँधते हैं न! हाथको हथकड़ीसे बाँधते हैं। पाँवको बेड़ीसे बाँधते हैं। आहा! यह बाँध-बूँध जो होता है न, उसको बन्धन बोलते हैं। यह बध और बन्धन। कैदमें पड़ना बन्धन है। बाँधना बन्धन है। मरना बध है। बन्धन और बध—ये दोनों सजा लेकर आप बैठ गये हैं। बोले—हमारे कहाँ बन्धन है? कहा—बन्धन रस्सीका बन्धन नहीं होता है। मनका बन्धन होता है। आप मनसे बँध गये हो। कहाँ बँध गये? बोले—सत्संगमें क्यों नहीं आते? बोले—महाराज! घरमें कोई नहीं रहता है। कोई देखनेवाला चाहिए न? बँध गये। बोले—भाई! ऑफिसमें जाना है। बोले—महाराज! रातको बहुत देर जगते हैं। सबेरे नींद नहीं खुलती है। बन्धन कहाँ है? तुमको कोई बाँधकर नहीं रखता है। तुम अपने मनसे स्वयं कहीं बँध जाते हो। तुम्हें बन्धन स्वीकार है। धनका बन्धन है। मकानका बन्धन है। स्त्रीका बन्धन है। पुत्रका बन्धन है। हैं? नहीं! अपने मनका बन्धन है। इस शरीरके बिना मैं कुछ नहीं हूँ। यह बन्धन नहीं है। यह तो बध है। बध माने अपनेको मार डाला। यह शरीर मरेगा, तो मैं मरूँगा। तुमने स्वयं अपनेको मौतके हवाले कर दिया।

(सावशेष)

आनन्द मुक्तावली

(प.पू. महाराजश्रीके ग्रन्थोंसे संकलित)

संकलनकर्त्री : श्रीमती वर्षाकिरण ठक्कर

★ इस कार्यात्मक मनको सबसे पहले अपने वशमें करना होगा। यह वह शस्त्र है, जो कि परिपक्व बनानेपर वासनात्मक मनकी छिपी हुई तहको ढूँढ निकालनेमें तथा पुराने संस्कारोंको, जो अवसर पाकर आक्रमण कर बैठते हैं, जला डालनेमें सहायक होगा। और इसी मनको, ईश्वराभिमुख बनानेपर उच्चतम समाधि प्राप्त की जा सकती है।

★ जबतक तुम दूसरोंसे मान-प्राप्तिकी आशा रखते हो तबतक निश्चय तुममें मिथ्याभिमान स्थान पाये हुए हैं। स्वयंकी आँखोंमें ही पवित्र बनो। तब दूसरे चाहें सो कहें, तुम्हें उनकी परवा न होगी। आदेश-उपदेशकी प्रतीक्षा मत करो। अपनी ही उच्च प्रवृत्तिका अनुसरण करो। केवल अनुभव भी तुम्हें सिखा सकता है। व्यर्थ भाषणमें समय नष्ट न करो। इससे तुम्हें कुछ भी न मिलेगा।

★ किसी पर आज्ञा न चलाओ। अपने ऊपर भी किसीको आज्ञा न चलाने दो। मृत्युसे निडर हो जाओ, क्योंकि यदि वह इसी क्षण तुम्हें ग्रस ले, तो यह जानो कि तुम पहले ही से मार्ग पर आरूढ़ हो। वैसे निर्भय होकर चले चलो। इस विशाल जीवनमें मृत्यु केवल एक कण मात्र है। मृत्युके परे भी आध्यात्मिक प्रगतिके लिये अवसर और सम्भावनाएँ हैं। प्रत्येक वस्तु अपने व्यक्तिगत पुरुषार्थ पर निर्भर है। ईश्वरकी कृपा सदा ही निकट है।

★ अहंकारके लेशमात्र चिह्नको भी मिटा डालो। जितना अधिक तुम अपने व्यक्तित्वका अध्ययन करोगे, उतना ही अधिक तुम्हें ज्ञात होगा कि प्राय: प्रत्येक अनुभवमें चाहे वह कर्मका हो या विचारका— अहंकार घुस पड़ता है। अहंकारको केवल जीतना ही नहीं है, उसे पूर्णतया कुचल डालना है। आत्मदोष अथवा आत्मग्लानिमें भी यह घृणित दृश्य उपस्थित होता है। साक्षात्कार-सम्पन्न पुरुष न तो दूसरोंको दोष लगता है और न अपनेको।

★ सहिष्णुताका अभ्यास करो। अपने उत्तर-दायित्वको समझो। किसीके दोषोंको देखने और उन पर टीका-टिप्पणी करनेके पहले अपने बड़े-बड़े दोषोंका अन्वेषण करो।

★ हृदयसे बुरी भावनाओंके निकल जाने पर तुम अपने स्थानमें रहकर भी बहुतोंको प्रकाश और सहायता प्रदान करोगे; चाहे स्वयं उनको न देखो।

★ ईश्वरत्व-प्राप्तिकी शुभेच्छा करो, तो देह-बुद्धिकी सीमा टूट जायगी। तुम शुद्ध आत्मा हो जाओगे। तुम प्रकृतिके दृश्यों-पर्वत, विशाल समुद्र, सूर्यसे शिक्षा ग्रहण करो। महान्‌से एकत्व प्राप्त करो।

★ सच्चा ज्ञान क्रियात्मक अनुभवमें निहित है। भोजनके पाचनकी भाँति सद्विचारोंके ग्रहणसे कार्यात्मक मनपर प्रभाव पड़ता है। शरीरकी रग-रगमें इन्हें प्रविष्ट हो जाना चाहिए। तब वह शरीर चिन्मय हो जाता है।

★ मन ही स्वयं गुरु हो जाता है, यह एक प्राचीन शिक्षा है। क्योंकि आत्मानुभवके लिये मन पर बार-बार प्रभाव डालनेसे वह स्वयं आत्मा हो जाता है।

★ महान् गुरुका स्वयं शिव एक भाग-मात्र है। अपने गुरुको शिव समझकर ध्यान करो। उन्हें अपना इष्ट समझकर ध्यान करो और साक्षात्कारकी शुभ घड़ीमें तुम प्रकृतिको, जो कि गुरु है, अपने इष्टमें मिला हुआ पाओगे। ★

घोषणा-पत्र

अन्तर्गत धारा 5 प्रेस रजिस्ट्रेशन आफ बुक्स एक्ट 1967

नाम	आनन्द बोध
पंजीयन संख्या	पं० सं० 47926/84
भाषा	हिन्दी
प्रकाशन अवधि	मासिक
फुटकर कीमत	5=00 रुपये
प्रकाशक नाम	विश्वम्भरनाथ द्विवेदी मन्त्री, स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वती सेवा-संस्थान सी.के. 36/20 ढुण्ढिराज, वाराणसी
राष्ट्रीयता	भारतीय
मुद्रक नाम	विश्वम्भरनाथ द्विवेदी
मुद्रण स्थल	डी. 14/65 टेढ़ीनीम, वाराणसी (उ०प्र०)
सम्पादक-नाम	विश्वम्भरनाथ द्विवेदी
स्वामित्व	स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वती सेवा-संस्थान

मैं विश्वम्भनाथ द्विवेदी घोषित करता हूँ कि उक्त तथ्य मेरी जानकारीमें सत्य हैं।

पंजीयन संख्या—पं०सं० 47926/84

विनम्र निवेदन

आनन्द बोध : के आप विज्ञ पाठक हैं। आगामी अप्रैल 2005 से आनन्द बोध बाईसवें वर्षमें प्रवेश कर रहा है। आपके सहयोग हेतु साधुवाद!

आनन्द बोध : का अप्रैल-मई 2005 (संयुक्तांक) 'आराधन विशेषांक' होगा।

आनन्द बोध : नववर्ष विशेषांक मई 2005 की 20 तारीखको प्रेषित किया जायेगा। प्रतीक्षा करें।

आनन्द बोध : के सदस्योंसे विनम्र निवेदन है कि अपना वार्षिक सदस्यता शुल्क यथाशीघ्र प्रेषित कर-नववर्षका अंक प्राप्त करनेसे न चूकें।

आनन्द बोध : हेतु लेख, रचनाएँ, सुझाव प्रेषित करें।

धन्यवाद!

—सम्पादक

आनन्द बोध : इक्कीसवाँ वर्ष

(अनुक्रमणिका-2005-2006)

प्राणनाथ !

बोले कि महाराज, आप तो बस ईश्वर, ईश्वर, ईश्वर की बात करते हो। ईश्वर के चक्कर में पड़ जायँ तो खाना-पीना भूल जाय। कहाँसे पैसे आयेंगे? श्रीमतीजी कैसे खुश रहेंगी? बोले देखो, जो तुम्हारी चिन्ता करता है वह सबकी चिन्ता करता है। तुम फिक्र मत करो।

अच्छा, तुम्हारे जीवन में ऐसी बात आती है कि नहीं जो तुम नहीं चाहते हो? तुम दुःख चाहते हो? बोले कि नहीं। उससे बचनेका परहेज करते हो? हाँ करते हैं। फिर भी दुःख क्यों देता है? जो तुम्हारे कर्मके अनुसार फल देनेमें इतना सजग है—वह क्या तुमको सुख नहीं देगा? मैंने अपने जीवन के अनेक अवसरों पर देखा है—जब मैं चुप हो गया तो ईश्वरने मेरी ओरसे बोलना शुरू कर दिया। जिस कामको मैंने छोड़ दिया उसको ईश्वरने किया। जब हमने रोटी बनानी बन्द कर दी तब ईश्वरने बनी-बनायी रोटी दी। यह मैंने देखा है और एक बार नहीं हजार बार देखा है। आप क्या समझते हैं? अपने बुद्धिके अभिमानमें हैं। कहीं इसको झुकने दो, नम्र होने दो। थोड़ी बुद्धिमें भी विनय आने दो।

कर्मानुसार, धर्मानुसार ईश्वर फल देता है। उसका भोग करो। इन्कार मत करो। इन्कार करनेका समय कब होता है? जब बुरा कर्म करनेके लिए पाँव उठते हैं, हाथ उठते हैं, बुरी बात बोलनेके लिए जीभ उठती है, उस समय अगर तुम इन्कार कर देते तो तुम्हारे जीवनमें दुःख आता ही क्यों? अब इन्कार करनेसे नहीं चलेगा। वह समय तो बीत गया।

हमारे सामनेकी यह बात है। एक आदमीने एक गलतीकी सत्पुरुषके सामने। उनको वह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने बाँयें हाथसे गलती करनेवालेका हाथ पकड़ा, दाहिने हाथसे दो चपत गाल पर मारे कि तुमने यह काम क्यों किया है? वह जो साधक था, वह तो खुश हो गया कि आप मेरी गलती दूर करनेके लिए मेरे ऊपर क्रोध करके चपत लगावेंगे—यह आपके बारेमें हमारी कल्पना नहीं थी। आप हमको इतना अपना समझते हैं? मनुष्य अपनापन समझनेमें गलती करता है। वह समझता है कि हमारे साथ अन्याय हुआ।

अरे बाबा, अपना प्यारा जो दे, उसका भोग करो। तुम चीज क्यों देखते हो? हाथ क्यों नहीं देखते। देनेवाला कौन है? दुश्मन आज अगर मिठाई भी दे, तो कल जहर भी दे सकता है और दोस्त आज जहर भी दे, तो वह दवा हो सकती है। तो, ईश्वर पर क्या इतना भी विश्वास नहीं है कि वह हमारा दोस्त है! वह हमें जन्म दे, रूलावे, वियोग दे, अपमानित करे, गाली दे, भूखा रखे—इन सबमें उसकी दया है। वह हमको जब मारता है, एक शरीर छुड़ाकर दूसरे शरीरमें ले जाता है—वह भी दया है।

प्रश्न यह आया कि, जीवनकी शैली क्या हो? बोले—हृदय, वाणी और शरीर—इनको नम कर दो। ईश्वरके सामने झुका दो। सख्त मत करो। ईश्वरके मनमें अगर खेलनेका आवे तो तुम अपनेको गीला आटा अथवा मोम बनाकर रख दो। वह चाहे जिस शक्लमें तुमको बनावें और तुम्हें उस शक्लमें नंगा देखकर या रोते देखकर कि हँसते देखकर, अगर ईश्वर खुश होता है तो तुम्हारा जीवन सफल हो गया। ऐसे भगवान्‌के सामने बोल दो—जैसे आपकी मर्जी हो, वैसा आप करें। हमारे प्राणनाथ तो आप ही हैं।

—महाराजश्री

पं० सं० 47926/84 समाचार पत्र अधि. R.P.A./Regd/AD-17/2003-05

विश्वम्भरनाथ द्विवेदी द्वारा स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वती सेवा-संस्थानके लिए सम्पादित प्रकाशित व आनन्दकानन प्रेस, टेढ़ीनीम, वाराणसीमें मुद्रित।